राधे राधे

सम्पादकीय

मानिनी का मानभवन बरसाना में है, जहाँ भगवद्–रस की निरन्तर वर्षा होती रहती है । यों तो भारतभूमि ही बड़ी पुण्यमयी है, उसमें भी ब्रजवसुन्धरा जो ब्रह्मा जी की सृष्टि से परे की रचना है –

फणि पर रवि तर नहिं विराट महँ नहिं सन्ध्या नहिं प्रात ।
माया काल रहित नित नूतन कबहुँ नाहिं नसात ।।
(श्रीहरिरामव्यास जी)

उसी ब्रजवसुन्धरा का पावनधाम श्री बरसाना है, जहाँ जगदाराध्य श्रीकृष्ण की भी आराध्या श्रीराधा का अवतरण हुआ है । निकुंजेश्वरी के नित्यकेलि इस दिव्य धाम में ब्रह्मा जी ने भी रज में अभिषिक्त होने की आकाँक्षा से ६० हजार वर्ष पर्यन्त तप किया, श्रीराधामाधव की कृपा से पर्वतरूप में निवास पाया ।

ततो ब्रह्मन् ब्रजं गत्वा वृषभानुपुरङ्गतः ।
पर्वतो भवसि त्वं हि मम क्रीडां च पश्यसि ।
यस्माद् ब्रह्मा पर्वतोऽभूद् वृषभानुपुरे स्थितः ।।

ब्रह्मांचल के रूप में चतुर्भुज ब्रह्मा के चार मुखों के प्रतीक मानगढ़, दानगढ़, भानुगढ़, विलासगढ़ आदि चार पर्वत शिखरों में मानगढ़ ही उस परमपुरुष नन्दनन्दन की स्वामिनी श्रीराधा का मानभवन कहलाता है, जहाँ वे अपने प्रियतम से मानकर बैठती हैं और भक्तानुरागी ब्रजेन्द्रनन्दन चरण पकड़कर श्री किशोरी जी को मनाते हैं ।

ब्रजभूमि के इस परम पुरातन दिव्य स्थल मान मंदिर में प्रयाग की भूमि को अपने जन्म से आलोकित करने वाले परमविरक्त सन्त श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी ने अपनी निष्ठा समर्पित करते हुए ब्रजवासियों के साथ–साथ समस्त अध्यात्म प्रेमी भक्तों व समस्त जड़–चेतन के कल्याण के लिए अपना आवास सुनिश्चित कर विगत् ६३ वर्षों से अपनी वाणी के दिव्य प्रकाश किरणों से जगत को आलोकित किया है । इन महापुरुष के सान्निध्य व सत्संग से यों तो लाखों जीव लाभान्वित हो रहे हैं परन्तु यहाँ के भक्तों की ऐसी इच्छा हुयी कि यह प्रकाशन का युग है । यद्यपि कई दिव्य ग्रन्थ मान मंदिर सेवा संस्थान से प्रकाशित होते रहते हैं फिर भी नियमित प्रकाशन यदि हो तो वह अधिक लाभप्रद हो सकेगा । उक्त धारणा से एक त्रैमासिक पत्रिका 'मान मंदिर' के प्रकाशन की स्वीकृति हमारे संस्थान की मिली, परिणामतः आगामी गुरुपूर्णिमा के सुअवसर पर परम श्रद्धेय गुरुदेव के पावन चरणों में यह पुष्प समर्पित हो रहा है ।

भावग्राही पाठकों से अनुरोध

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान जो अनेकानेक भगवत्प्रीत्यर्थ सत्कर्मों का संचालन लोक कल्याण की भावना से व प्रभु की प्रियता के लिए निःशुल्क कर रहा है । यथा –

दस–पन्द्रह हजार ब्रजपरिक्रमार्थियों को प्रतिवर्ष ब्रजयात्रा कराना, मान मंदिर द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य का वितरण करना, पूज्य बाबा महाराज के सत्संग–कीर्तन की सी.डी., डी.वी.डी. वितरित करना, अतिथि, भक्तजन तथा संतजनों के लिए प्रतिदिन प्रसाद व्यवस्था, भारतवर्ष के अनेकों गाँवों में बिना किसी स्वार्थ के भगवन्नाम प्रचार–प्रसार करना, मान मंदिर पर निवासरत कथावाचक–कथावाचिकाओं के माध्यम से देश–विदेश में श्रीमद्भागवत कथा का याचनारहित सर्वत्र श्रवण कराना, गुरुकुल में सैकड़ों बालक–बालिकाओं को आध्यात्मिक शिक्षा का दान देना, धाम सेवा – ब्रज के कुण्डों, प्राचीन लीला स्थलियों का जीर्णोद्धार कराना, श्री माताजी गौशाला – जिसमें ४० हजार गौवंश का बिना किसी से कुछ माँगे पालन–पोषण करना.....आदि समस्त सत्कार्य पूर्णतः निःशुल्क श्री मानमंदिर सेवा संस्थान से सम्पादित हो रहे हैं । इसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका भी लोकास्वादनार्थ ही है, इसका भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है । ब्रजयात्रा व गौशाला की भाँति स्वेच्छानुदान स्वीकृत है ।

संरक्षक
श्रीराधामानविहारी लाल

सम्पादक
श्री राधाकान्त शास्त्री जी

प्रकाशक
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
website : www.maanmandir.org
e-mail : ms@maanmandir.org
Tel. : +91-9927338666, 9837679558
9927194000

सच्चा साथी भगवान्

(पूज्य बाबा महाराज के प्रवचन से)

अरे जीव ! याद करो, जब तुम पैदा हुए थे तो तुम्हारे साथ क्या कोई था ? कोई नहीं था । याद करो, जो लोग मरते हैं क्या उनके साथ कोई जाता है ? न स्त्री जाती है, न पुत्र जाता है, उसने बड़ी मेहनत से जो धन कमाया वह भी नहीं जाता है, यहाँ तक कि उसने जन्म भर जिस शरीर को सँवारा–सजाया उस शरीर को भी लोग यहीं जला देते हैं, वह भी साथ छोड़ देता है । क्या मरने के बाद कोई व्यक्ति भूसा का एक तिनका भी ले जा सका है ? इसलिए कोई साथ नहीं जाता है । हाँ, केवल हमारा एक सच्चा साथी है, वही जन्म के साथ था और वही मरते समय रहेगा ।

मीराबाई ने कहा है –

म्हारे जनम मरण रा साथी,
थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती ।
यो संसार सकल जग झूठो,
झूठा कुल रा न्याती ।।

साथी तो केवल एक है, वही हर समय साथ देता है लेकिन उसको हम भूल चुके हैं क्योंकि संसारी कामनायें, आसक्तियाँ जीव को खा जाती हैं, मर जाता है जीव परन्तु ये आसक्तियाँ नहीं छूटती हैं। माँ, बाप, भाई–बन्धु, बेटा–बेटी ये सब स्वार्थ के नाते हैं "मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते" जब तक जिसका स्वार्थ रहता है

तभी तक ही वह सामने आता है । ये सारा संसार स्वार्थ का है, तू क्यों नहीं समझता है कि साथी तो केवल एक वही 'श्रीकृष्ण' है । पिता भी वही है, माँ भी वही है, बेटा–बेटी भी वही है, सम्बन्धी वही है, स्वामी वही है, गुरु वही है, सखा वही है । प्रभु के अलावा अन्य संसार के लोग अपने नहीं हैं सिर्फ एक श्रीकृष्ण ही हमारे हैं ।

जब तू बूढ़ा होगा तो तेरे मरने से पहले ही परिवार वाले तुझे छोड़ देंगे । यहाँ तक कि तेरी चमड़ी भी तेरा साथ छोड़ देगी, जिस चमड़ी को तूने जवानी में बड़ा सजाया–सँवारा था । परन्तु अन्धा प्राणी समझता ही नहीं कि हमारी इन्द्रियाँ, हमारा शरीर, हमारे साथी, सब साथ छोड़ देते हैं लेकिन फिर भी जीव होश में नहीं आता, दूसरों का आश्रय लेने लगता है । भगवान् ने स्वयं कहा है –

मोर दास कहाइ नर आसा ।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ।।
(रा.च.मा.उत्तर. ४६)

किसी जीव का भरोसा किया तो सच्चे सेवक नहीं हो । दुनिया की सभी आशाओं और सभी विश्वासों को छोड़ दो, सिर्फ एक प्रभु को पकड़ो वही तेरे सच्चे प्रिय, आत्मा, बन्धु व सुहृद हैं ।

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ।।
(रा.च.मा.किष्कि. १२)

देखो, प्रभु से प्रेम करोगे और भजन के रास्ते पर चलोगे तो सारा संसार तुमको रोकेगा, फिर भी तुम नहीं रुकोगे तो ये सांसारिक सगे–सम्बन्धी लोग अपने सम्बन्ध तोड़ देंगे क्योंकि संसार तभी तक सगा है जब तक तुम इसमें फँसे हो, आसक्त हो । सब दुनिया वाले तुझको छोड़ देंगे इस डर से तू डर मत, ये सारा संसार तो थोड़ी देर में छूटेगा ही, इसलिए तू खुद ही इसे छोड़ दे और ब्रजधाम में आकर के दिन–रात भगवान् का कीर्तन करो, भगवद्भक्तों का सत्संग सुनो, धाम की सेवा करो । सूरदास जी कहते हैं –

"हरि बिनु मीत न कोउ तेरे ।
सूर स्याम बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे ।।"

सच्चे हितैषी भगवान् ही हैं । जब मनुष्य मर जाता है तो प्यारी से प्यारी स्त्री, पुत्र, पारिवारिक सगे–सम्बन्धी लोग मृतक शव को जल्दी से जल्दी घर से बाहर ले जाते हैं और जला देते हैं, ये सब तुझे घर से निकालें, इससे पहले ही तू खुद निकल जा और सब कुछ छोड़ दे, एकमात्र प्रभु की शरण ग्रहण कर, उन्हीं का आश्रय पकड़, अगर भगवान् का आश्रय लेगा तो मृत्यु तो छोटी चीज है, साक्षात् काल भी तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है । जीव को जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि का भय कब तक रहता है ? इसको स्वयं ब्रह्मा जी ने कहा है –

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ।। (भा. ३.९.६)

जब तक जीव भगवान् को अपना नहीं मानता है अर्थात् उनकी चरण–शरण ग्रहण नहीं करता है, तभी तक भय बना रहता है । लोग मूढ़ हैं – धन–सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, घर–परिवार, सुहृद, शरीरादि असत् सम्बन्धों को अपना मान बैठे हैं, इनमें 'मैं–मेरेपन' का दुष्ट आग्रह कर लिया है, बस यही दुःख का कारण है । इसीलिए भयभीत रहते हैं कि कहीं सम्पत्ति नष्ट न हो जाये, बेटी–बेटा न मर जाएँ, स्त्री को कुछ न हो जाए, शरीर में कोई रोगादि न हो जाए । संसार की किसी चीज को अपना मानना ही भय का कारण है ।

इसलिए हे प्रभु ! जब जीव आपके चरणकमलों का आश्रय कर लेता है, बस उसी समय भय खत्म, दुःख खत्म, शोक खत्म ।

इसलिए नश्वर (क्षणभंगुर) संसार की समस्त आसक्तियों को अविलम्ब त्यागकर भगवान् के चरणकमलों का आश्रय लो, बस उसी समय भय खत्म, दुःख खत्म, शोक खत्म । प्रभु की आराधना में जीवन समर्पित कर दो, इसी में मनुष्य–जन्म की सफलता है । ■

(पूज्य बाबा महाराज द्वारा रचित 'बरसाना' पुस्तक से)

अपना नहीं है कोई, इक यार जमाने में ।
आना ऐ श्याम अपने, दिल के गरीब खाने में ।।
देखा दुनिया में कहीं भी प्यार न निभता,
मिलती हैं ठोकरें ही, दर्दे दिल को जगाने में ।
बस स्वार्थ भरी दृष्टि सब में भरी देखी,
धोखा ही धोखा देखा है आँखों के लड़ाने में ।
प्रेम के नाम पे व्यापार ही देखा,
बस नाश ही देखा यहाँ अपने ही बिक जाने में ।
अपना तन भी साथ छोड़ देगा ऐ यारो,
जीवन मेरा बलिदान तुझपे तुझको ही पाने में ।
प्रभु को सर्वस दिए बिना कुछ भी नहीं मिलता,
क्या रखा है बलिदान हो जग से धोखा खाने में ।
हर एक स्वार्थी यहाँ स्वारथ की है दुनियाँ,
स्वार्थियों से मिलता है क्या सब कुछ भी लुट जाने में ।
तू ही है दीनबन्धु दीनों पे दया रखता,
सुदामा को दी स्वर्णपुरी अपने ही समाने में ।
भोग छोड़े कौरवों के जो सजाये थे,
विदुरानी के छिलकों में पाया स्वाद था खाने में ।
ऋषियों के यज्ञ के हविष्य को भी जो छोड़ा,
शबरी के जूठे बेर खाए थे स्वाद पाने में ।

राधे राधे

धाम महिमा

('रसीली ब्रजयात्रा' पुस्तक से)

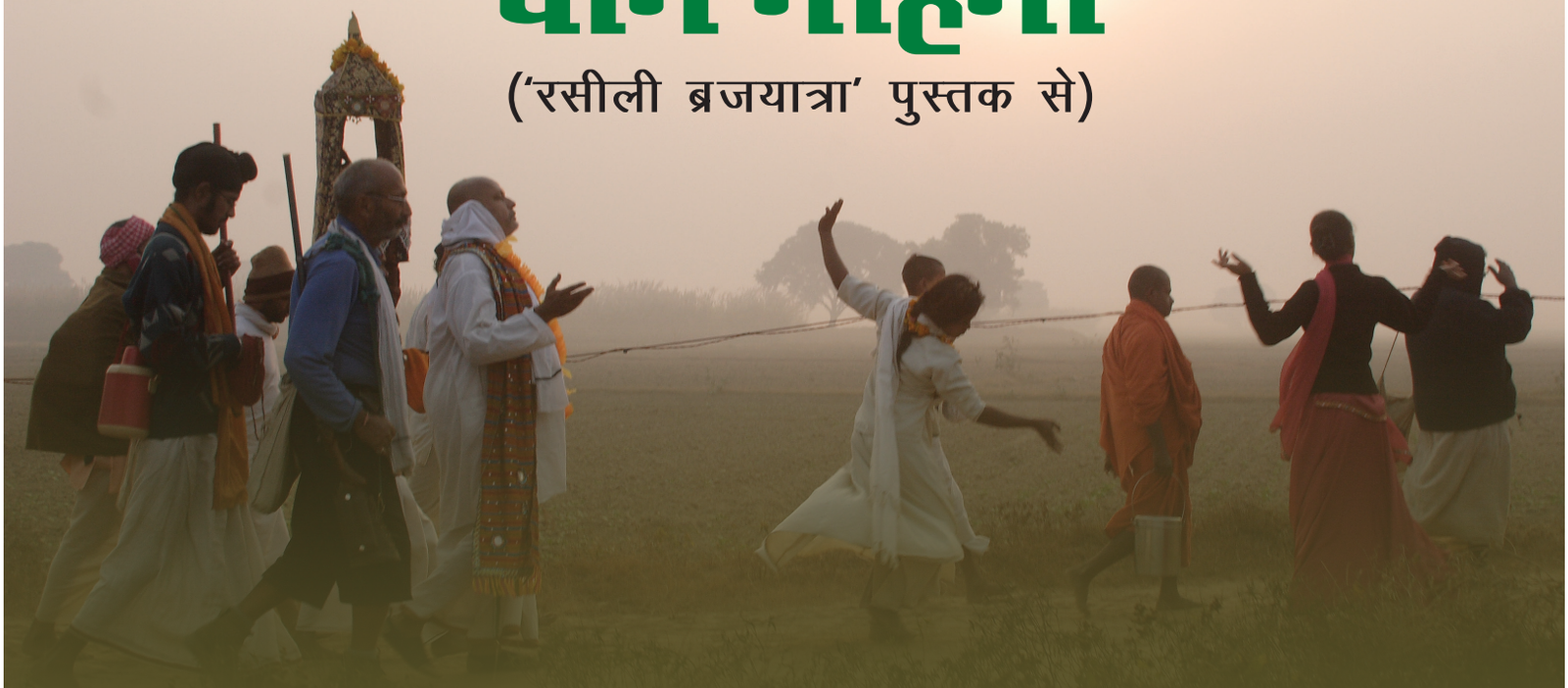

धामोपासना

ब्रह्मरज का अपभ्रंश ही ब्रज रज है अतएव 'रज में रज होय मिलूँ ब्रज में' इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु अनेकानेक धाम के विज्ञवर्यों ने यहाँ आजन्म निष्ठा सहित वास किया।

'ब्रज की रज में धूर बनूं मैं,
ऐसी कृपा करो महाराज ।।'

भगवान् का नाम, रूप, लीला, गुण, जन, धाम, धामी सब एक ही हैं । भगवान् का अवतार होता है तो सभी का अवतार होता है । धाम का भी, उनके जनों का भी जैसे – गर्गसंहिता, गोलोक खण्ड के अनुसार ब्रह्मा, शिवादि ने गोलोक जाकर अवतार की प्रार्थना की ।

करुणार्द्र श्री कृष्ण ने उसी क्षण स्वीकृति भी प्रदान कर दी किन्तु गमनोद्यत श्रीकृष्ण को देखकर अनल्प दया वर्षिणी श्रीराधा अवाञ्छित वियोग की आशंका से मूर्च्छित हो गईं क्योंकि यह विछोह उनके लिए सर्वथा असह्य था।

श्रीजी को व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण बोले – 'अदभ्रसुदये ! तुम भी साथ ही प्रस्थान करो ।' तब श्रीजी ने कहा –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ।।
(ग.सं.गो.खं. ३.३२)

'जहाँ श्री वृन्दावन नहीं है, जहाँ तपन–तनया यमुना नहीं है, जहाँ श्री गिरिराज गोवर्धन नहीं है, वहाँ मेरा मन किसी भी प्रकार स्वस्थ प्रसन्न नहीं रहेगा ।' ब्रज इनका निज–निकेतन है, जो इन्हें निज प्राण तुल्य प्रिय है । अतः श्याम–स्वामिनी ने स्पष्ट मना कर दिया, तब श्रीजी के प्रसन्नतार्थ ८४ कोस की सम्पूर्ण वसुधा श्री गिरिराज जी, श्रीयमुनाजी को प्रभु ने धारा पर भेजा ।

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिःस्वयम् ।
गोवर्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ।।
(ग.सं.गो.खं. ३.३३)

इस प्रकार धरा पर धामी के पूर्व धाम का अवतरण हुआ, धाम के साथ–साथ नन्द–यशोदा, वृषभानु–कीर्ति, सखा–समुदाय, समस्त परिकर का अवतार हुआ है । यह चर्चा 'गर्गसंहिता' में दो बार हुई है, प्रथम तो गोलोक खण्ड अध्याय–३ में, पुनः वृन्दावन खण्ड अध्याय–२ में ।

धामी से धाम श्रेष्ठ

जिस प्रकार प्रेमिल एवं भावुक समाज नामी से नाम को श्रेष्ठ कहता है ।

'कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार ।'

(रा.च.मा.बाल. २३)

अथवा – प्रभु के जनों को प्रभु से श्रेष्ठ मानते हैं, स्वयं भगवद्वाक्य है – 'मद्भक्त पूजाभ्यधिका' (भा.११.१६.२१) उसी प्रकार सच्चे भावुक धाम को धामी से श्रेष्ठ मानते हैं ।

'विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू को न निहार ।'

(श्रीभट्ट जी)

वृन्दारण्यं त्यजेति प्रवदति यदि कोऽप्यस्य जिह्वां
छिनद्मि।
श्रीमद्वृन्दावनान्मां यदि नयति बलात् कोऽपि
तं हन्म्यवश्यम् ।।
कामं वेश्यामुपेयां न खलु परिणयायान्यतो यामि कामं ।
चौर्यं कुर्यां धनार्थं न तु चलति पदं हन्त वृन्दावनान्मे ।।

(वृन्दावन महिमामृतम् २.१५)

यदि कोई वृन्दावन त्याग की चर्चा भी करेगा तो उसकी जिह्वा काट लूँगा । बलात् वृन्दावन के बाहर ले जाएगा तो उसे समाप्त कर डालूँगा । भोगेच्छा होने पर भले ही वेश्या का संग कर लूँगा किन्तु विवाह के लिए अन्यत्र नहीं जाऊँगा । धन के लिए चोरी भी कर लूँगा किन्तु वृन्दावन से बाहर एक पग भी नहीं जाऊँगा । स्वयं श्री भगवान् का कथन है –

'पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकं ।'

(बृहद्गौतमीयतंत्र)

धाम साक्षात् भगवद् रूप है । भागवतकार का भी यही कथन है –

'हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ।'

(भा. १०.५.१८)

यह ब्रजमंडल ३ विशेष कारणों से रमा का आक्रीड स्थल बना ।

१. हरेर्निवास – भगवान् का नित्य निवास होने से ।
२. आत्म – भगवान् का शरीर होने से ।
३. गुण – उन्हीं के समान गुणवान होने से ।

और भक्ति देवी ने तो यहाँ तक कह दिया –

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ।।

(भा.माहा. १.५०)

'कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात होते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हुई, मैं जब वृन्दावन पहुँची तब से पुनः परम सुन्दरी–सुरुपवती–नवयुवती हो गई हूँ ।'

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ।।

(भा.माहा. १.६१)

इसी बात को नारद जी कहते हैं कि यह वृन्दावन धाम धन्य है, जिसके संयोग से भक्ति नवीन तरुणावस्था को प्राप्त हो नृत्य कर रही है ।

महावाणी में धाम महिमा –

यही है यही है भूलि भरमो न कोउ,
भूलि भरमे ते भव भटक मरिहौ ।

छीत स्वामी जी ने भी इसी ब्रज भूमि की याचना की है –

अहो विधना तोपैं अँचरा पसारि माँगौं,
जनमु–जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ ।

गोविन्द स्वामी की ब्रज निष्ठा –

कहा करों वैकुण्ठहि जाय ।
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय ।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को ,
ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ।।

तभी तो इंदिरा भी शश्वदाश्रय लिए बैठी हैं ।

'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजःश्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि'

(भा. १०.३१.१)

ब्रह्मा जी से प्रसन्न होकर तो प्रभु ने अपना निगूढ़ रहस्य स्पष्ट कर दिया –

यावानहं यथाभावो यद्रुपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ।।

(भा. २.६.३१)

यावानहम् – जितना मैं हूँ, "मैं" से तात्पर्य मेरा धाम एवं मेरा परिकर । यथाभावः – नित्य सत्ता भगवान् का रूप, गुण और लीलाएँ ये सब भी स्वयं भगवान् हैं । माता कुन्ती ने कहा – "भगवल्लीला गाने से अतिशीघ्र भगवद् प्राप्ति हो जाती है" और इस लीला की निष्पत्ति धाम एवं परिकर के बिना अशक्य ही है । अतएव कारुण्य–कल्लोलिनी–रासोत्सवोल्लासिनी श्रीराधा की अमित कृपा–दया से ही धाम का धरा पर अवतरण हुआ । जिस समय वाराह प्रभु के दन्ताग्र पर पृथ्वी स्थिर थी, पृथ्वी ने प्रश्न किया – "प्रभो ! सम्पूर्ण संसार प्रलय जल से भरा हुआ है । अतः आप मुझे कहाँ स्थापित करेंगे?" प्रभु ने कहा – "जहाँ वृक्ष दिखाई देंगे, वहीं तुम्हारी स्थापना होगी," किन्तु "प्रभो ! मेरे बिना वृक्ष कहाँ होंगे? मैं ही तो उनका एकमात्र आश्रय स्थान हूँ । क्या कोई और भी धरणी है?" पृथ्वी

ने पूछा, तब तक कुछ वृक्षावली दिखाई पड़ी, "यह कौन सा स्थान है प्रभो !" सविस्मित पृथ्वी ने पूछा –

माथुरं मंडलं दिव्यं दृश्यतेऽग्रे नितंबिनि ।
गोलोकभूमिसंयुक्तं प्रलयेऽपि न संहृतम् ।।
(ग.सं. १.५३)

श्री भगवान् बोले – "यह मेरा ब्रज मण्डल है । जो गोलोक से संयुक्त है । प्रलय में भी इसका संहार नहीं होता है ।"

यह धाम मायातीत, कालातीत है, इसके आश्रय से मनुष्य भी कालातीत हो जाता है । सदा सुलभ होने से वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ है –

'अहो मधुपुरी रम्या वैकुण्ठाच्चगरीयसी।'

वैकुण्ठ अप्राप्य है किन्तु यह अवतरित धाम, ये पुरियाँ अप्राप्य नहीं हैं, ये सदा–सर्वदा सुलभ हैं । जिस प्रकार भगवान् जन–कल्याणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं –

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं ।
कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ।।
(रा.च.मा.बाल. १२२)

उसी प्रकार धाम पापात्माओं पर भी दया करता है –

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृष्याश्च ये ।
सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ।।
(रा.सु.नि. २६४)

ऐसे परमोदार धाम के अचिन्त्य माहात्म्य को समझ पाना भगवद्कृपैकगम्य है । ब्रज में जो भी जीव हैं, उनका क्रोध, द्व`ष जब सह लिया जाता है तो शीघ्र धामवास मिल जाता है । यह धाम ही नित्य धाम की प्राप्ति कराता है । यहाँ के निवास मात्र से अप्राप्य नित्य धाम सहज प्राप्त हो जाता है ।

भगवद्वाक्य –

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा ।
मम समीप नर पावहिं बासा ।।
(रा.च.मा.उत्तर. ४) ■

अद्भुत ब्रजयात्रा

अद्भुत क्यों ? ब्रजयात्रा तो ब्रह्ममोहलीला के पश्चात् स्वयं ब्रह्मा जी द्वारा भी की गई । वैदिक काल से पुराणकाल व वर्तमान में लाखों भक्तों द्वारा की जाती रही है । परन्तु यहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि "हरि अनन्त हरि कथा अनंता" उस अनन्त, अखण्ड, अनादि, अपरिमेय, अलौकिक परमात्मा के दिव्य–धाम ब्रजवसुन्धरा को कोई किस सीमा में आबद्ध कर सकता है । फिर भी समय–समय पर भक्तों, विद्वज्जनों एवं अनुसंधान विशेषज्ञों व महापुरुषों ने अपनी वाण्याभिव्यक्ति के माध्यम से श्रद्धालुओं के लिए अपने अनुभवों को प्रस्तुत किया है । तदनुसार आज करोड़ों भक्त वैष्णव अलग–अलग भाँति से ब्रजदर्शन और ब्रजपरिक्रमा करते हैं । कालक्रमानुसार लोगों ने ब्रजभूमि को भी एक निश्चित सीमावधि में सीमित कर दिया तदनुसार मथुरा जनपद (उ.प्र.) के विशेषतया मथुरा, वृन्दावन, बलदेव, गोवर्द्धन आदि एवं भरतपुर (राजस्थान) के कामा, डीग आदि एवं हरियाणा के होडल का क्षेत्र ब्रज चौरासी कोस माना जाने लगा । मान मंदिर सेवा संस्थान के माध्यम से भी ब्रज के परम विरक्त संत पूज्य श्री रमेश बाबा जी जो सन् १९५४ से अखण्ड ब्रजवास कर रहे हैं । ब्रज के गाँव–गाँव में भगवल्लीलाओं का अनुभव करते हुए अनुसन्धानरत् रहे और पिछले २८ वर्षों में तो भारी जनसमूह के साथ ब्रजपरिक्रमा करते हुए ब्रज के वास्तविक स्वरुप को उन्होंने ब्रज के ऐतिहासिक, पौराणिक व महापुरुषों की वाणियों के आधार पर हम सबके समक्ष रखा, जैसा कि मथुरा मण्डल, ब्रज प्रदेश या सूरसेन प्रदेश की सीमाओं का उल्लेख कुछ इस तरह अनेक ग्रन्थों में पाया गया है ।

"पुराणों में 'माथुर–मण्डल' अथवा 'मथुरा–मण्डल' प्रायः वही मण्डल प्रतीत होता है, जिसे आज ब्रज–मण्डल कहा जाता है । श्यूआन–चुआङ् भारत में लगभग ६३५ ई. में आया था । उसने मथुरा राज्य का जो वर्णन किया है, उससे विदित होता है कि इस राज्य का विस्तार ५००० ली (लगभग ८३३ मील) तथा उसकी राजधानी (मथुरा नगर) का विस्तार २० ली (लगभग साढ़े तीन मील) था । कनिंघम के अनुसार तत्कालीन मथुरा–राज्य में वर्तमान 'वैराट' और 'अतिरंजी खेड़ा' के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं, अपितु आगरा के दक्षिण में 'नरवर' और 'शिवपुरी' तक का तथा पूर्व में 'काली सिंध' नदी तक का भू–भाग रहा होगा । इस प्रकार इस राज्य में मथुरा, आगरा जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली और धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य के उत्तर का आधा भाग शामिल रहा होगा । पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जिझौती से तथा दक्षिण में मालवा की सीमा से मिलती रही होगी ।"

इसी तरह चाचा वृन्दावन दास जी ने भी इसी विस्तृत ब्रजभूभाग का उल्लेख अपनी पुस्तक 'प्राचीन ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा' में दर्शाया है, जो हमारे लिए सबसे बड़ा प्रमाण है ।

चूँकि ब्रज के समग्र स्थलों पर भी भगवान् की लीलाएँ हुईं हैं, फिर उनकी उपेक्षा क्यों ? ब्रज के समग्रमार्ग का दर्शन मथुरा, वृन्दावन, गोवर्द्धन, बरसाना, महावन, गोकुल, बलदेव के अतिरिक्त शूरसेन के गाँव बटेश्वर, भिण्ड जिले के गोहद जहाँ तक गायें जाने की सीमा का उल्लेख हुआ है । मुरैना की मुचुकुन्द गुफा, अलवर के नदबई, खेडली एवं भरतपुर के पहाड़ी, कामवन, जुरहरा, हरियाणा के पुन्हाना, सौंध, हसनपुर, नौहझील, वेसवाँ, पचावर, रेणुकाधाम, सूरकुटी, कोयले, बाद आदि का भी दर्शन चूँकि अभी तक किसी यात्रा के माध्यम से नहीं किया गया है, इसीलिए इसे आवश्यक समझते हुए मान मंदिर द्वारा प्रथम बार एक वाहन यात्रा के रूप में दर्शन किया जायेगा, जो अपने में अद्भुत होगी; यह वास्तविक ब्रजदर्शन का प्रयास होगा ।

समय–समय पर महापुरुष ब्रज के प्राकट्य के लिए अवतरित होते रहे हैं । आज भी पूज्य सन्त श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी महाराज ने ब्रजप्रेमी जनों के लिए बड़ा भारी उपकार किया है । चलो, अक्टूबर २०१७ में अद्भुत ब्रजयात्रा कर अपना जीवन कृतार्थ करें ।

राधे राधे

जो अकाम सो राम

(ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी)

बलात् पाप में प्रवेश कराने वाली प्रेरक शक्ति कौन है ? पार्थ (अर्जुन) के इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् श्री कृष्ण ने कहा –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ।।
(गी. ३.३७)

रजोगुण से उद्भूत काम ही पाप का बाप है, अपूर्तावस्था में क्रोध व अतिशयावस्था में लोभ बन बैठता है; अघ से कभी न अघाने वाला इसका विस्तीर्ण उदर, विधि भी चाहें तो न भर सकें ।

लैटर बॉक्स है पेट हमारा ।
जो भी डालो होता गायब, पेट हमारा बना अजायब ।
ऐसा लम्बा लेट हमारा, सदा खुला है गेट हमारा ।।

अथवा

मैं भीमसेन का भ्राता हूँ ।
पूआ–सूआ रबड़ी–सबड़ी बस पाँच सेर ही खाता हूँ ।।

सिद्धान्त की नींव पर बहुत सत्य है यह बालगान कि महापापी यह काम ही परम शत्रु है जीव का ।

'पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।'

अथवा

'जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।'
(गी. ३.४१.४३)

साधक मात्र इस सनातन शत्रु को यत्नपूर्वक समाप्त कर दे । गीता गायक का यही एकमात्र संदेश–आदेश ग्रन्थ में कई स्थानों पर हुआ ।

श्री सूर के शब्दों में –

हरि की सरन में तू आव ।
काम क्रोध विषाद तृष्ना, सकल जारि बहाव ।।

श्री ऋषभ वचन –

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।
येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ।।
(भा. ५.५.२५)

जिनका धन भगवान् हैं, ऐसे अकिंचन जन स्वयं भगवान् के बार–बार दिये जाने पर कुछ भी (स्वर्ग, मोक्ष .....) स्वीकार नहीं करते हैं, फिर ऐसे निर्वासिक चित्त में राज्यादि तुच्छ वस्तुओं की वासना का उदय कहाँ संभव ?

श्री ध्रुव वचन –

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म–
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्ते ।
(भा. ४.९.१७)

प्रभु पादाम्बुजों की प्राप्ति ही उनके लिए निष्काम भजन का वास्तविक फल है ।

जिस समय श्री नृसिंह ने प्रह्लाद को वर माँगने को कहा–

'वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ।।'
(भा. ७.९.५२)

"वत्स ! मैं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला हूँ, अभीष्ट वर माँग लो ।"

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ।
एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः ।।
(भा. ७.६.५५)

आज निष्किंचन से पाला पड़ा प्रभु का तो प्रलोभन का अमोघ शर भी व्यर्थ चला गया ।

जहँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
तुलसी कहु कैसे रहें, रवि रजनी इक ठाम ।।

असुर श्रेष्ठ प्रह्लाद का परम निर्वासिक चित्त एकमात्र भगवान् को धारण किये था, वर का प्रलोभन शरवत् चुभ रहा था, अतः इष्ट की ही भर्त्सना करने लगे –

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ।।
भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेश्वचोदयत् ।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ।।
नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ।।
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ।।
(भा. ७.१०.२,३,४,५)

"हे देव ! अब तो निवृत्त होने आया था आपकी चरण–शरण में, इस जन्मजात विषयासक्त को आपके द्वारा भी यदि लोभ का विस्तीर्ण जाल फैला हुआ मिला तो अब यह अवलम्ब भी किसका लेगा ? असक्तावस्था में ही मुमुक्षत्व जाग्रत् होता है । मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरी माता, मेरा पुत्र, मेरा कुटुम्ब.....इन दुराग्रहों के रहते मुमुक्षत्व संभव नहीं । मैं मुमुक्षु बनकर शरण में आया था किन्तु यहाँ भी लोभ की फाँसी पर आपने चढ़ा दिया मुझे ।"

ओह ! यह तो करुणार्णव की करुणा पर मिथ्या आरोप रख दिया मैंने, प्रह्लाद को दुःख हुआ ।

अब भाव भी बदला और भाषा भी ।

प्रह्लाद – "नहीं....नहीं.....प्रभो...! भला आप ऐसा क्यों करने लगे ? यह सब तो मात्र स्वभृत्यलक्षण के परीक्षण के लिए ही था । भक्त यदि भगवान् से भी कुछ इच्छा रखता है तो वह भक्त नहीं व्यापारी है ।"

सुने न देखे भगत भिखारी ।
तिनके दाम चाम को लोभ न, जिनके कुंज बिहारी ।।
विषइन की परतीति न हरि सौं, प्रीति रीति बाजारी ।
व्यास आस सागर में डूबे, आई भक्ति बिसारी ।।
(श्रीहरिराम व्यास जी)

स्वामी से स्पृहा रखने वाला सेवक, सेवक नहीं है । स्वार्थ परायण सेवक को अत्यन्त नीच कहा ।

जो सेवक साहिबहि सँकोची ।
निज हित चहइ तासु मति पोची ।।

(रा.च.मा.अयोध्या. २६८)

सेवक से सेवादि का स्वार्थ रखने वाला स्वामी, स्वामी नहीं है ।

जो गुरु करे शिष्य की आस ।
श्याम भजन ते भया उदास ।।
(श्रीविहारिनदेव जी)

श्रीप्रह्लाद जी व नृसिंहदेव तो परस्पर सर्वथा स्वार्थ–युत वासना–विहीन सेवक–स्वामी हैं ।

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ।।
(भा. ७.१०.८)

एक सूक्ष्म सी कामना इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति एवं सत्य अनुक्षण इन द्वादश शक्तियों का निर्मूलन कर देती है ।

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ।।
(भा. ७.१०.६)

कहाँ तक कहूँ, कामना विहीन पुरुष साक्षात् भगवद् रूप है, यह कहना ही पर्याप्त होगाय चूंकि इसके परे कुछ कहा भी नहीं जा सकता । ■

भगवान का नाम, उनका रूप, उनके जन, उनका धाम, उनकी लीलायें– ये सभी समान रूप से कल्याण करती हैं।

कृष्ण प्राप्ति दया, दीनता और दासभाव बिना नहीं होती है।

भक्त सेवी श्रीत्रिलोचन जी

(पूज्य बाबा महाराज के प्रवचन से)

एक भक्त हुए हैं श्रीत्रिलोचनजी; उनके यहाँ दिन–रात भक्तों की सेवा होती रहती थी । इसलिए वहाँ निरन्तर भक्तों का आवागमन बना रहता था, सदा भीड़ लगी रहती थी । एक साथ सैकड़ों भक्तों के टोल आते थे और उनके यहाँ भोजन पाते थे ।

जहाँ भक्त सेवा होती है, ऐसी जगह सेवा करने के लिए अवश्य भगवान् आते हैं । त्रिलोचन जी के यहाँ भी भगवान् गये एक मजदूर का रूप बनाकर के नौकरी ढूँढ़ने कि हमको कोई नौकर बनाकर रख ले । त्रिलोचन जी को जरूरत भी थी एक मजदूर की, क्योंकि बहुत–से भक्तों के टोल एक साथ आ जाते थे तो उनको भोजन बनाने, खिलाने–पिलाने आदि के लिए आवश्कता पड़ती थी ।

अस्तु एक दिन भगवान् स्वयं एक मजदूर का रूप बनाकर गयेय शरीर पर एक फटी–सी फितूरी है, पाँव में जूता नहीं है । त्रिलोचन जी के यहाँ हर समय कीर्तन भी होता रहता था, वे भगवान् के सच्चे भक्त थे । अतः भगवान् उनके घर के बाहर पहुँचकर बोले –

"हमें कोई नौकर बना के रख ले, हम नौकरी माँगने आये हैं ।"

त्रिलोचन जी भीतर से दौड़े, अरे ! हमारे यहाँ तो बहुत भीड़ रहती है, कोई आ गया, चलो बात करते हैं ।

त्रिलोचन जी मजदूर रूप ठाकुर जी के पास गये और बोले – "अरे भैया ! तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ?"

ठाकुरजी हँस गये, समझ गए कि अब हमारा भक्त आ गया, बोले – "भाई ! देखो, मैं नौकरी ढूँढ़ने आया हूँ, मुझे नौकरी चाहिए ।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा, भाई ! तुम नौकरी चाहते हो, तुम्हारा कोई पता–ठिकाना ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मेरे कोई माँ नहीं, मेरे कोई बाप नहीं ।"

अब ठाकुर जी कह तो रहे हैं सच लेकिन त्रिलोचन भक्त समझ रहे हैं कि कहीं ऐसे अनाथ होयगो, काऊ ने पालन–पोषण कियो होयगो ।

त्रिलोचन जी – "तो भाई ! तेरी तनखाय क्या है ? क्या लेगा तू ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "देखो जी, एक भी पैसा नहीं लूँगो ।"

त्रिलोचन जी – "तो नौकरी काय बात की ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मैं खाऊँ ज्यादा, या मारे मोय कोई नौकर नहीं रखे ।"

त्रिलोचन जी – "भैया ! कितनो खावै ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "पाँच किलो ।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा, भैया ! खायवै की कमी तो है नहीं । पाँच किलो हम रोज खवायेंगे तोय । और कोई तेरी ठहर, कोई शर्त ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "हमारी कोई निन्दा न करे, तब हम नौकरी करते हैं । जा दिन कोई निन्दा करेगो, हम छोड़ के चले जायेंगे ।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा, भाई ! हम निन्दा क्यों करेंगे, हमारे यहाँ तो निन्दा को काम ही नहीं है, दिन–रात कीर्तन करैं और हमारे यहाँ जितने आवैं (कोई नातेदार, रिश्तेदार 'सांसारिक–सम्बन्धी' नहीं आवैं), भगवान् के भक्त आवैं, उनकी

सेवा कर लैगो ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "अरे, वही सेवा तो मैं जानूँ, भक्तन की सेवा मैं करूँ, याही मारे मैं तेरे दरवाजे आयो हूँ ।"

(त्रिलोचन जी ने मन में सोचा – अरे, ये तो कोई भगत मालूम पड़े ।)

त्रिलोचन जी – "भाई ! भक्त बड़े–बड़े आवैं, टेढ़े–मेढ़े आवैं, रिसैले–गुस्सैले आवैं ।"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मैं सब झेल लूँगो ।"

त्रिलोचन जी – "अच्छा ! तो भाई, ये कपड़ा पहन ले । फटे–फटे तेरे कपड़ा हैं ।"

त्रिलोचन जी ने मजदूर रूप ठाकुर जी की फटी–सी फितूरी उतरवाय करके नए वस्त्र धारण कराये ।

त्रिलोचन जी – "तेरो नाम कहा है ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "मेरो नाम है अन्तर्यामी ।"

त्रिलोचन जी – "अन्तर्यामी नाम तो बड़े जोर को रखो, कौन ने रखो भाई ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "पतौ नहीं साहब, मैंने पहले कह्यो दृ मेरी मैया–बाप नहीं हैं ।"

सब सच कह रहे हैं कि हम अन्तर्यामी भगवान् हैं लेकिन उनको पहिचान कौन सकै ? मुश्किल तो ये है । फटे–फटे कपड़े में आये हैं, कोई पनहैया नहीं, जूती नहीं ।

त्रिलोचन जी – "अच्छा भाई, अन्तर्यामी ! तू एक बात बता कि सेवा कैसी कर सकैगो ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "सुनो –

सेवा करने में मैं हूँ बड़ा चातुर, सेवक मैं पुराना ।
सेवा ही की मैंने अब तक, सेवा धर्म ही जाना ।।
कोई एक बार अजमा ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।
मैं तो दास पुराना दासों का .....

त्रिलोचन जी – "भाई ! तू कैसी–कैसी सेवा कर सकै, ये भी बता दे ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – सुनो, भाई !

कोई पग चप्पी करवा ले, चाहे सिर को मलवा ले ।
कोई सेना नाई की सी मालिस भी करवाय ले ।।
कोई नौकरी में रख ले, भक्तों की सेवा करवा ले ।।
मैं तो दास पुराना दासों का .....

त्रिलोचन जी – "अरे भाई ! तू इतने काम जानै और तऊ तेरे ऊपर फटी सी फितूरी ।"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "साहब ! हमने तो बता दियौ, हम सब काम जानैं लेकिन खावैं ज्यादा सो कोई नौकर नहीं रखे और रखउ ले तो बुराई करै, तो मैं भाग जाऊँ वहाँ ते ।"

त्रिलोचन जी – "और क्या जानै ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "सुनो, भाई !

चाहे चरखा चलवाय ले, अच्छी कातूँ मैं कबिरा से ।
चाहे कपड़ा रँगवा ले, अच्छी रँग दूँ मैं नामा से ।।
मैं तो दास पुरानों दासों का .....

त्रिलोचन जी – "अरे भाई ! तेरे में तो बड़े गुण हैं और कहा जानै ?"

मजदूर रूप ठाकुर जी – "और सुनो, साहब !

चाहे चक्की पिसवाये ले , पीसा जनाबाई संग मैंने ।
चाहे नाच नचा ले मुझसे, नाचा मीरा संग मैंने ।।
मैं तो दास पुराना दासों का .....

त्रिलोचन जी – "बस–बस, भैया ! तू तो बड़े काम को आदमी है और हमने तोय रख लियौ ।"

अब (ठाकुर जी) अन्तर्यामी सेवा करने लग गये और कोई जान नहीं पायौ ।

१०० साधु आ जायें, प्रसाद पायके जब सोवें तो उतने ही रूप धर लें और सबन्ह के जाय के पाँव दाबें, हर साधु सोचे हमारे ही पास है अन्तर्यामी ।

काऊ ने सोचो प्यास लगी है तो पहले पहुँच जायें लोटा लेकर के ।

प्यासा साधु – "अरे भाई ! अन्तर्यामी, तेरो नाम सच में अन्तर्यामी है, मोय प्यास लग रही और तू पहले से लोटा लेके आय गयो ।"

अन्तर्यामी – "हाँ जी, मोय सेवा को अभ्यास है ।"

यानि बड़ी सेवा करी और १३ महीने तक सेवा करते रहे।

एक दिन त्रिलोचन भक्त की स्त्री गयीं पानी भरवे कुआ पै, तो वहाँ और गाँव की पनिहारी मिलीं (परस्पर में बातें करने लगीं) –

पनिहारिन – "अरी वीर ! तेरे यहाँ तो बड़ो अच्छो सेवक आ गयो है अन्तर्यामी, सब काम कर दे ।"

त्रिलोचन की स्त्री – "हाँ, सब काम कर दे, ढेर के ढेर बर्तन माँज दे, लकड़ी फाड़ दे, पानी भर दे, जहाँ जाय कोई काम बाकी नहीं रहे । काम करने की कहो और काम पूरो तैयार ।

लेकिन एक बात है – खावै बहुत, ५ किलो भोजन पूरो खाय जाय ।"

उधर बुराई करी और इधर अन्तर्यामी गायब । उनकी ठहर थी कि हम से सेवा तुम जन्म भर करवा लो, लेकिन निन्दा करने पर चला जाऊँगा ।

भगवान् शिक्षा दे रहे हैं कि हमलोगों को निन्दा नहीं करनी

चाहिए ।

महात्माओं ने लिखा है –

लोके गरीयसी माता मातृतोऽप्यधिकः खलः ।
माता पुनाति हस्ताभ्यां खलस्तु जिह्वयामलम् ।।

संसार में सबसे बड़ी मैया मानी गयी, क्योंकि अपने हाथों से मल आदि धोवे बच्चा के, मैया पाप को नहीं धुल सकती है और जो दुष्ट लोग होते हैं वो निन्दा कर–करके जीभ से हम सबके पाप को खा जाएँ । जो काम मैया नहीं कर सकती है वो काम निन्दक लोग किया करते हैं, पाप तुमने किया और निन्दकों ने निन्दा कर–करके तुम्हारा सारा पाप खा लिया ।

इसीलिये कहा गया है –

"पर निन्दा सम अघ न गरीसा ।"

(रा.च.मा.उत्तर. १२१)

पराई निन्दा के समान पाप कुछ नहीं है ।

अस्तु जैसे ही अन्तर्यामी के बारे में त्रिलोचन जी की स्त्री ने पनहारिन से कहा कि अरी ! खावै बहुत, वैसे ही अन्तर्यामी गायब हो गये ।

अब गायब हो गये तो वहाँ सब काम फेल रहा है ।

त्रिलोचन जी बोले दृ "अरे अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ! ओ रे अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ !"

और दिना तो बुलाने की जरूरत नहीं थी, पहले ही हाजिर हो जाते थे । आज चिल्ला रहे हैं दृ अन्तर्यामी ! अन्तर्यामी !! अरे अन्तर्यामी !!!

कोई नहीं आ रहा है, त्रिलोचन जी समझ गये कि किसी ने अन्तर्यामी की बुराई की है, उसकी ठहर थी कि जिस दिन तुम बुराई करोगे हम यहाँ से चले जायेंगे ।

भगवान् कभी नहीं चाहते हैं कि हमारा भक्त किसी की बुराई करै, निन्दा करै या पाप खावै । ये जीभ भगवान् का नाम लेने के लिए है, भगवान् शिक्षा देते हैं कि तुम बुराई करके क्यों पाप खाते हो ?

तो अब त्रिलोचन जी समझ गये, उतने में उनकी स्त्री आयी पानी भर केय उन्होंने उससे पूछा कि क्या तैने बुराई करी थी अन्तर्यामी की ? वह पहले कुछ नहीं बोली चुप रही, बाद में उसने कहा कि हाँ, मैंने अन्तर्यामी की निन्दा की थी पनिहारियों से कि 'खावै बहुत' ।

त्रिलोचन जी ने अपनी स्त्री से कहा – "अरे, तैने अन्तर्यामी को गायब करा दियौ ।"

त्रिलोचन जी अन्तर्यामी के वियोग में पागल होकर के चारों ओर घूमने लग गये और पुकारने लगे –

अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ! अन्तर्यामी ऽ ऽ ऽ ऽ !!

सारा दिन बीत गया पागल की तरह, रात बीत गयी, अन्तर्यामी ! अन्तर्यामी !! चिल्लाते–चिल्लाते । न खाना खा रहे हैं, न पानी पी रहे हैं । स्त्री भी चुप, क्या करे ? पति पागल हो गया । दूसरा दिन बीत गया, दूसरी रात बीत गयी, अन्तर्यामी !.... कहाँ ? अन्तर्यामी !! .....कहाँ ? चिल्लाते हुए तीन दिन – तीन रात बीत गयीं बिना खाये–पियेय तब आकाशवाणी हुई (बड़ी मीठी वाणी आकाश से आयी) – "अरे त्रिलोचन जी !"

त्रिलोचन जी की ऊपर दृष्टि गयी, है तो कोई नहीं लेकिन आवाज आ रही है, बोले – "कौन है भैया !"

आकाशवाणी – "मैं हूँ तुम्हारा इष्ट, मैं ही तुम्हारे घर में सेवा करने के लिए आया था । देखो, हमारी ठहर थी कि जब कोई हमारी निन्दा करैगो, तब हम वहाँ से चले जायेंगे । अब तुम भोजन करो, हमारी आज्ञा मानकर के । तुम कहो तो फिर से तुम्हारी सेवा कर सकता हूँ, बोलो क्या चाहते हो ?"

अब त्रिलोचन जी चुप । भगवान् से कैसे कहें कि आप फिर से आओ, जूठे बर्तन माँजो, हमारी जूतियों को गाँठो, हमारे कपड़ों को धोओ, कैसे कह सकते हैं ।

त्रिलोचन जी – "प्रभु ! आपने हमको ठग लिया, भगवान् होकर के हमारे घर में आपने ऐसी नीच सेवायें कीं, आप मोरी साफ करते थे – मल–मूत्र तक, जूठे बर्तन माँजते थे, जूती गाँठते थे, आपने क्या नहीं किया । मैं तो पापी हूँ, नीच हूँ, मुझको तो डूब कर मर जाना चाहिए, आपसे मैंने सेवा ली । मैं कैसे कह सकता हूँ कि आप सेवा करने के लिए आओ ।"

भगवान् – "तो तुम भोजन करो और तुम जो भक्तों की सेवा करते हो, हम उससे प्रसन्न हैं, हम यही बताने के लिए तुम्हारे घर नौकरी करने आये थे ।"

देखो – जो व्यक्ति भक्तों की सेवा करता है, भगवान् उसके घर जरूर आते हैं । स्वयं भगवान् के श्रीमुख के वचन हैं कि मेरी सेवा करने से सौ गुना श्रेष्ठ है, हमारे भक्त की सेवा करनाय मुझको भोग लगाने से सौ गुना श्रेष्ठ है, हमारे भक्त को खिलाना–पिलाना –

'मत्सेवनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु सेवनम् ।
मद्भोजनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम् ।।'

(वराहपुराण)

श्रद्धापूर्वक भक्तों को भोजन पवाने वाले का तो कल्याण होता ही है, साथ ही उसकी २१ पीड़ियाँ तक तर जाती हैं ।

यो विष्णुभक्तान् निष्कामान् भोजयेत् श्रद्धयान्वितः ।
त्रिसप्त कुलमुद्धृत्य स याति हरि मन्दिरम् ।।

(बृहन्नारदीय पुराण) ■

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः

(डॉ. पं. श्रीरामजीलाल शास्त्री जी)

जिस तरह ब्रह्मा जी सृष्टि की वृद्धि करते हैं, गुरुदेव भी अपनी शिक्षाओं के द्वारा मानव को नया जन्म देते हैं अतः ब्रह्मा के रूप में माने जाते हैं । विष्णु भगवान् सृष्टि के पालन–पोषण कर्त्ता माने जाते हैं, गुरुदेव भी अपने सदुपदेशों के द्वारा अपने शिष्यों की वृत्तियों का पोषण करते हैं एवं महेश्वर (शिव) की भाँति शिष्य की असद् वृत्तियों का अपनी फटकार (ताड़ना) के माध्यम से संहार करते हैं अतः गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों के रूप में हमारे सामने आते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि यह मानव शरीर माता–पिता की देन है, सैकड़ों वर्ष की आयु पाकर भी यदि माता–पिता की सेवा की जाये तो भी उनके उपकार का बदला नहीं चुकाया जा सकता, वह हमेशा उनका ऋणी ही रहेगा । जो लोग माता–पिता की सेवा नहीं करते हैं, यम के दूत उन्हीं के माँस को काटकर उन्हें खिलाते हैं ।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ।।
यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।
वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ।।
(भा. १०.४५.५,६)

गुरु का स्थान तो सभी सम्बन्धों से बढ़कर है । माता, पिता, इष्ट, मित्र, सखा, बन्धु सब कुछ जिसने गुरुदेव को मान लिया, उसका काल भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता । ऐसा भक्त जो गुरुदेव और भगवान् में कुछ अन्तर नहीं समझता वह तो निर्भय हो गया ।

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नक्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ।।
(भा. ३.२५.३८)

निष्कपट भाव से गुरु सेवा करने से भगवान् जितने प्रसन्न होते हैं उतने तो व्रत, यज्ञ, तप, वर्णाश्रम धर्म पालन आदि से भी नहीं होते । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्री मुख से कहते हैं ।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ।।
(भा. १०.८०.३४)

ऐसे गुरुदेव का लक्षण क्या है, उनकी वेषभूषा कैसी होती है, लाल कपड़े पहनते हैं या श्वेत कपड़े, उनको हम कैसे पहचानें कि ये ही सच्चे गुरु हैं ? नारद जी कहते हैं –

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ।
इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ।।
(भा. ४.२६.५१)

अर्थात् – जिससे किसी को अणुमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रियतम आत्मा है, ऐसा जो पुरुष जानता है वही ज्ञानी है, और जो ज्ञानी है वही गुरु एवं साक्षात् श्रीहरि है ।

किसी भी व्यक्ति को निर्भय कर दिया जाये, यह सब सत्कर्मों से बढ़कर है । जीव निर्भय कब होगा ? जब वह निर्भय प्रभु की शरण में जाये, यह पुनीत कार्य गुरुदेव की कृपा से ही सम्भव है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।
(भा. ३.७.४१)

सच्चे गुरु न अपना सम्मान चाहते हैं और न ही अपनी पूजा या प्रशंसा । पृथु जी के शब्दों में –

'सत्युत्तमश्लोक – गुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ।।'
(भा. ४.१५.२३)

गुरु शब्द का अर्थ होता है 'गुं रौति इति' अर्थात् जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर दे, मिटा दे और शिष्य का अर्थ होता है 'शासितुं योग्यः' यानि जो शासन के योग्य हो, जिस पर शासन किया जा सके ।

वर्तमान समय में सच्चे गुरु व शिष्य दोनों का अभाव है। ऊँचे गुरु वे माने जाते हैं जिनके शिष्यों की संख्या अधिकाधिक हो । शिष्य भी सोचते हैं हमने गुरु जी की सेवा में इतनी भेंट दी है अतः गुरूजी हमारी ही बात मानें, ऐसे गुरु शिष्यों के विषय में संतों ने कहा है –

"लोभी गुरु लालची चेला ।
दोनों नरक में ठेलम ठेला ।।"

जो गुरु बहुत से शिष्य बनाकर उनका धन तो ले लेते हैं परन्तु उन्हें कल्याण के मार्ग पर नहीं लगाते हैं उन्हें ऐसी गड़बड़ बात सिखाते हैं कि गुरु की पूजा तो भगवान् भी करते हैं, अतः गुरु का स्थान भगवान् से भी बढ़कर है । सच्चे गुरु अपनी पूजा न कराकर भगवान् की पूजा को ही प्रेरित करते हैं क्योंकि स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसातल की सम्पत्ति तथा समस्त योगसिद्धियों की प्राप्ति का मूल उनके चरणों की पूजा ही है ।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ।।
(भा. १०.८१.१६)

आजकल गुरुओं की बाढ़ आ रही है । जैसे एक व्यापारी अपना माल बेचने को आतुर रहता है, आज के गुरु भी लोक कल्याण का चोला पहनकर नए–नए शिष्य बनाने व उन्हें कंठी पहनाने के लिए बहुत अधिक लालायित रहते हैं । स्वयं जो राग–द्वेष में फँसे हैं वे शिष्यों को क्या बचा पायेंगे? उनकी वैसी ही स्थिति होती है जैसे कोई अन्धा अन्धे को ही अपना पथ प्रदर्शक बना ले, वैसे ही अज्ञानी जीव अज्ञानी को ही अपना गुरु बनाते हैं ।

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत–
स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ।।
(भा. ८.२४.५०)

अधिकांश लोग इस भ्रान्ति में रहते हैं कि गुरूजी से जब तक कंठी नहीं ली जायेगी तब तक भगवान् या अन्य देवता भी प्रसन्न नहीं होंगे । लेकिन वे लोग यह अच्छी तरह समझ लें –

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'

जब तक सद्गुरु की प्राप्ति न हो श्रीकृष्ण को ही अपना गुरु मान लेना चाहिए, वे सब गुरुओं के भी गुरु जगद्गुरु हैं । श्रीमद्भागवत में राजर्षि सत्यव्रत ने कहा है –

न यत्प्रसादायुतभागलेश–
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस–
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ।।
(भा. ८.२४.४६)

जितने भी देवता, गुरु और संसार के दूसरे जीव हैं वे सब यदि स्वतन्त्र रूप से एक साथ मिलकर भी कृपा करें तो आपकी कृपा के १० हजारवें अंश के अंश की बराबरी नहीं कर सकते । प्रभो आप ही सर्वशक्तिमान हैं, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ । सच्चे गुरु भगवत्स्वरूप होते हैं । उनकी प्राप्ति भी कृष्ण कृपा से ही सम्भव है ।

श्रीकृष्ण कृपा से ही जग में गुरु प्राप्ति जीव को होती है ।
अन्यथा भटकता फिरता है नहीं सब सीपों में मोती है ।।

परम्परानुसार गुरु पूर्णिमा, जिसे व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं जो आषाढ़ शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को होती है, श्रद्धालु शिष्य गण अपने गुरुदेव की बड़े भक्तिभाव के साथ पूजा करते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि अब तक हमारा जो समय बिना आराधना के व्यतीत हुआ, अब आगे का समय ऐसे नहीं जाने देंगे । गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में "अब लौं नसानी अब न नसैहौं" सच्चे मन से गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना ही उनकी सच्ची सेवा है, उपासना है और यही सच्ची गुरु भक्ति है । ■

'श्रीकृष्ण सङ्कीर्तनम्'

(पूज्य बाबा महाराज के प्रवचन से)

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणम्
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम् ।।
(शिक्षाष्टकम् १)

कलिपावनावतार श्रीकृष्णचौतन्य महाप्रभु जी के मुख से निःसृत यह प्रसिद्ध श्लोक प्रेमा–भक्ति का सार है । इसमें उन्होंने कृष्ण–संकीर्तन की अत्यद्भुत महिमा के किञ्चित् अंशांश का प्रतिपादन किया ।

कृष्ण–संकीर्तन क्या है ?

भगवन्नाम–कीर्तन, भगवद्रूप–कीर्तन, भगवल्लीला–कीर्तन, भगवद्धाम–कीर्तन, भगवज्जन–कीर्तन और भगवद्गुण–कीर्तन – ये सब कृष्ण–कीर्तन हैं ।

भक्तवृन्दों का समूह में एकत्रित होकर इनका प्रेमपूर्वक गान करना ही श्रीकृष्ण–संकीर्तन है; परन्तु अधिकांश लोग केवल भगवन्नाम कीर्तन ही जानते हैं, जबकि भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम, जन, गुण सभी कीर्तन समान हैं । यथा –

भगवन्नाम–कीर्तन

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।
राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम श्याम राधे राधे ।।

भगवान् के नाम अनन्त हैं; जैसे – राम, कृष्ण, गोविन्द, मुरारि, हरि, नारायण....आदि । श्रद्धा–विश्वास पूर्वक भगवान् के किसी भी नाम का कीर्तन करना – इसको भगवन्नाम–कीर्तन कहते हैं ।

भगवद्रूप–कीर्तन

श्यामसुन्दर नंदलाल, राधा जीवन गोपाल ।
वंशीधर जय मुरलीधर जय, मोर मुकुटधर कुण्डलधर जय ।
गलवैजयन्ती माल, राधाजीवन गोपाल ।।

जिस कीर्तन में भगवान् की रूप–माधुरी का वर्णन आता हो; जैसे – गले में वैजयन्ती माला है, सिर पर मोर मुकुट है, अधरों पर वंशी सुशोभित है.....आदि, इसको भगवद्रूप–कीर्तन कहते हैं ।

भगवल्लीला कीर्तन

कृष्ण कन्हैया वंशी बजैया रास रचौया हरे हरे ।
माखन खवैया गिरिवर उठैया गौयें चरैया हरे हरे ।।

भगवान् ने जो मनोहारिणी दिव्य लीलाएँ की हैं; जैसे – माखन चुराना, गिरिवर उठाना, रास रचाना, गौचारण करना आदि । इन लीलाओं का प्रेमपूर्वक गान करना – इसको भगवल्लीला–कीर्तन कहते हैं ।

भगवद्धाम–कीर्तन

जय वृन्दावन धाम, जय जय श्री राधे ।
जय बरसानो गाँव, जय–जय श्री राधे ।
जय गह्वरवन धाम, जय जय श्री राधे ।

जय गोवर्द्धन धाम, जय जय श्री राधे ।।

जिस भूमि पर भगवान् अवतरित हुए, लीलाएँ कीं – उसको पुरी या धाम कहते हैं; जैसे – ब्रज भूमि में अवतार हुआ, अवध भूमि में अवतार हुआ, वृन्दावन में लीलायें कीं, गोवर्धन में लीलायें कीं, बरसाने में लीलायें कीं.....आदि स्थलों के नाम का कीर्तन करना – इसको भगवद्धाम–कीर्तन कहते हैं ।

भगवज्जन–कीर्तन

जय मीरा के गिरिधर नागर, जय तुलसी के सीताराम ।
जय नरसी के साँवरिया, जय सूरदास के राधेश्याम ।।
श्रीकृष्ण चौतन्य प्रभुनित्यानन्द ।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि–गौरभक्तवृन्द ।।

भगवान् के जो भक्त हुए हैं; जैसे – मीराबाई, तुलसीदास, सूरदास, नरसी, चौतन्य महाप्रभु .....आदि, इन भक्तों के नाम का कीर्तन करना – इसको भगवज्जन–कीर्तन कहते हैं ।

भगवद्गुण–कीर्तन

गोविन्द हरे गोपाल हरे, जय जय प्रभु दीनदयाल हरे ।।
ब्रजराज हरे ब्रजनाथ हरे, जय जय प्राणों के नाथ हरे ।।

भगवान् के अन्दर जो अनन्त दिव्य गुण हैं; जैसे – दीनबन्धु, करुणासिन्धु, दीनानाथ, दीनदयाल, भक्तवत्सल, शरणागतवत्सल आदि, इन दिव्य गुणों का गान करना – इसको भगवद्गुण–कीर्तन कहते हैं ।

भगवन्नाम, रूप, लीला, धाम, जन, गुण आदि सब कृष्ण–कीर्तन के अन्तर्गत ही हैं, इनमें अणुमात्र भी भेद नहीं है । जिस तरह भगवान् नित्य, चिन्मय हैं, उसी तरह भगवन्नाम रूपादि भी नित्य, चिन्मय हैं । इनमें प्राकृत भाव की कल्पना करना ये महान् अपराध है । इनमें जो प्राकृत गुण दृष्टिगोचर होते हैं, वह हमारे दूषित भाव के कारण होते हैं । अगर श्रद्धापूर्वक इनमें से किसी एक का भी सतत् सेवन किया जाए तो वह अवश्य सहज में भगवान् की प्राप्ति करा देगा ।

सावधानी के लिए जागरुक करना पड़ता है क्योंकि वर्तमान काल के जो भेदवादी लोग हैं, वे भगवान् के कीर्तन में भेद पैदा करते हैं । यह भेद करना नामापराध है । उस अपराध से कहने–सुनने वाले सभी को नुक्सान होता है । इसीलिए इन भेदवादियों के चक्कर में न पड़कर, अपनी रूचि के अनुसार सभी प्रकार के कीर्तन करना चाहिए ।

जैसे गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में नाम–संकीर्तन की प्रधानता है; उसी तरह वल्लभ सम्प्रदाय में लीला–कीर्तन की प्रधानता है, वहाँ सेवानुसार लीलाओं का गान होता है । इसी तरह अन्य सम्प्रदायों में भी परम्परानुसार चले आ रहे कीर्तन प्रधान हैं । अतः कीर्तन सभी करते हैं क्योंकि उसके बिना भक्तिपथ चलता नहीं है । अन्तर इतना है कि साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण केवल अपने आचार्यों की ही वाणियों का गान करते हैं, लेकिन जो विज्ञ पुरुष होते हैं वे इन सब भेदों को नहीं मानते हैं क्योंकि भेद–बुद्धि रखना गलत है, ये समाज के लिए हानिकारक है । उससे परस्पर विवाद बढ़ता है, निन्दा, आलोचना–प्रत्यालोचनाएँ होती हैं।

अपने आचार्यों की वाणी में निष्ठा रखना ये तो उचित है परन्तु अन्य कीर्तनों में अभाव करना – ये अपराध है । ऐसा नहीं कि हम कृष्ण–लीला का तो गान करेंगे लेकिन कृष्ण नाम का गान नहीं करेंगे । तो ये सब अशास्त्रीय है और नामापराध है । वस्तुतः सब है कृष्ण–कीर्तन ही । मुख्य बात है, किसी तरह हमारा मन लग जाए । इसमें बहस नहीं करना चाहिए कि बर्फी बढ़िया है कि लड्डू बढ़िया है, इन सबसे क्या मतलब? जो रुचिकर लगे वह खाओ । कृष्ण–रस का आस्वादन करो वह ऊँचा है ।

कृष्ण–संकीर्तन से लाभ –

समूह में कीर्तन करने से सम्पूर्ण शरीर, इन्द्रियों का विनियोग होता है अर्थात् आँख, कान, वाणी, हाथ, पाँव आदि सभी इन्द्रियाँ काम में आ जाती हैं । जैसे आखों का उपयोग भक्तों के दर्शन में हो जाता है, कानों का उपयोग कीर्तन सुनने में हो जाता है, वाणी का उपयोग उच्च स्वर से भगवान् के गुणगान करने में हो जाता है, हाथों का उपयोग वाद्ययन्त्र बजाने में हो जाता है, पैरों का उपयोग नृत्य करने में हो जाता है.....अर्थात् समस्त इन्द्रियों का प्रयोग कीर्तन में हो जाता है । इसका सीधा असर मन पर पड़ता है । श्रीहरिदास ठाकुर एक लाख नाम जप जोर–जोर से करते थे, ताकि कानों में भी नाम सुनाई पड़े; इससे स्वयं का भी लाभ होता है और दूसरे जीवों का भी । बृहन्नारदीय पुराण में प्रह्लाद जी ने कहा है –

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः ।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चौर्जपन् श्रोतृन् पुनाति च ।।

जप करने से सौ गुना श्रेष्ठ है उच्च स्वर से कीर्तन करनाय क्योंकि जप करने वाला तो अपना ही कल्याण करता है परन्तु कीर्तन करने वाला स्वयं तो पवित्र होता ही ही साथ से सारे संसार का कल्याण करता है ।

पशु–पक्षी–कीट आदि बलिते ना पारे ।
शुनिलेइ हरिनाम तारा सब तरे ।।
जपिले से कृष्णनाम आपनिसे तरे ।
उच्च सङ्कीर्तन परोपकार करे ।।

जो कीड़े–मकोड़े हैं, ये बेचारे भगवान् का नाम तो ले नहीं सकते किन्तु सुन तो सकते हैं और भगवान्नाम में इतनी शक्ति है कि सुनने मात्र से ही उनका कल्याण हो जाएगा। इसलिए नाम–कीर्तन जोर–जोर से जो करता है, वह अपना उद्धार तो करता ही है, जड़–चेतन सबका उद्धार करता है । ■

त्रैकालिक सत्संग से जीवन निर्माण

श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा विगत षष्टि वर्षों से सतत गह्वर वन में त्रैकालिक सत्संग अनवरत गति से ब्रजवासियों तथा विश्व के अनगिनत प्राणियों में भक्ति का संचार कर रहा है । पूज्य श्री बाबा महाराज ने ब्रज को ब्रज बनाने का नहीं अपितु समस्त जगत को अपनी सत्संगसुधा से अभिसिंचित कर उनके जीवन को भगवद् रस में सराबोर कर दिया । यद्यपि मानमंदिर सेवा संस्थान की बहुत सारी गतिविधियाँ दृष्टिगोचर हैं परन्तु ब्रह्मबेला की प्रभातफेरी फिर प्रातःकाल का दैनिक सत्संग और मध्यान्ह का श्रीमद्भागवताध्यापन एवं संध्याकालीन महारास (नृत्यमयी आराधना) किसी भी मानव के जीवन परिवर्तन के लिए पर्याप्त है । मानव जीवन अनन्त काल के कुत्सित संस्कारों के कारण अनेकानेक विकृतियों में लिप्त रहता है। महापुरुषों का वात्सल्य गौमाता के वात्सल्य की भाँति होता है, जो अपने तुरन्त के जन्मे बच्चे के मल को अपनी जिह्वा से चाट–चाट कर साफ कर देती है । बाबा महाराज भी वैसे करुणाकातर हैं तभी तो सदैव ऐसा सुअवसर प्रदान करते हैं ताकि जीव सहज ही भवसागर से पार हो सके ।

प्रातः ब्रह्मबेला में प्रभातफेरी

प्रातःकाल की मंगल बेला (ब्रह्ममुहूर्त) में संस्थान में रहने वाले बच्चे, सन्त, साध्वियाँ नित्यप्रति ढोलक–माइक के साथ श्री राधारानी के परमपावन गहवरवन धाम से चलकर गिरिशिखरों की मनोरम पगडंडियों से भगवन्नाम की धूम मचाते, नाचते–गाते राधारानी मंदिर पहुँचकर मंगला दर्शन करते हैं और वहाँ से अन्य गाँवों के ब्रजवासी भक्तजन भी उस प्रभातफेरी में सम्मिलित हो जाते हैं, तो भगवत्भक्तों की टोली कलिमल तिमिर को दूरकर मानो सारे जगत को आलोकित करने वाली रविकिरणों का अनुसरण कर रही हो । श्री धाम बरसाना के बाजार से होते हुए, चित्रासखी के गाँव चात्रकवन (चिकसौली) होते हुए लगभग साढ़े तीन कि.मी. की यात्रा पूर्ण कर गहवरवन लौटती है । यह नित्यप्रति की प्रभातफेरी परिक्रमा परमपरोपकारिणी सिद्ध होती है, भगवन्नाम से लाखों जीव नित्य पवित्र होते हैं तथा बिना किसी क्लिष्ट साधन के सहज ही भवसागर से पार जाने के अधिकारी बन जाते हैं ।

सत्संग सुधा का प्रवाह

बाबा महाराज प्रातः अपनी रसमयी वाणी से मानव मस्तिष्क की सूक्ष्म तरंगों को अध्यात्ममयी बनाते हैं । महापुरुषों की वाणी उनके अपने हृदय में विराजमान परमपुरुष परमात्मा के श्री चरणों का स्पर्श करके निसृत हो श्रोता तक उस स्पर्श के सुख का अनुभव कराती है । यद्यपि भगवान् की कथा स्वयं में पाप–तापनाशिनी होने के साथ–साथ जीवनदायिनी होती है फिर भी वक्ता जितना निःस्पृह होता है, तभी वह श्रोता को सच्ची भगवत्शरणागति तक पहुँचाता है । समाज में व अध्यात्म जगत में भी आज बहुत सी भ्रांतियाँ व्याप्त हैं । लोग रसोपासना के ग्रहण करने व ज्ञान–वैराग्य के शुष्क साधन से बचने की बात करते हैं और अनुभवों की अनुभूति से सीधे–सीधे प्राणियों को मार्गच्युत कर देते हैं । यही कारण है प्रातः हजारों साधक नित्य राग–द्वेष से परे गुणातीत भक्ति का आस्वादन यहाँ करते हैं ।

मध्यान्ह का श्रीमद्भागवताध्यापन

श्रीमद्भागवत, जो भगवान् का वाङ्गय स्वरूप् है और समस्त शास्त्र प्रमाणों के प्रणेता व्यास जी महाराज की लेखनी से अनुस्यूत सर्वोत्कृष्ट कृति है । जिसमें सर्वोत्तम धर्म भागवतधर्म का निरूपण है, परन्तु उसी भागवती कथा को आज एक धनोपार्जन का व्यापक क्षेत्र बना दिया गया है । कथा व्यापार बन गयी, लाखों–लाखों की धनराशि पूर्व में ही ठहराई जाने लगी, उससे कथा सार जाता रहा । भगवान् से मिलाने वाली श्रीमद्भागवत कथा को इसी आशय से अपने समस्त आश्रमवासियों व भक्तों को श्री बाबा महाराज अष्टाचार्यों की टीकाओं के माध्यम से नित्य पढाते हैं । यही कारण है यहाँ के अनेक ब्रह्मचारी बालक, बालिकाएँ आज लोकपावनी कथा से इस जगत की निष्काम सेवा कर रहे हैं । शुकदेव जी नग्नरूप में परीक्षित जी को कथा श्रवण कराने आये थे और कथा के उपरान्त वैसे ही चले गये । उन्होंने कथा की कोई भेंट नहीं ली शुकदेव जी की निष्काम कथा की परम्परा का अनुसरण करते हुए श्री बाबा महाराज भी निष्काम कथा द्वारा न केवल आश्रमवासियों को लाभान्वित कर रहे हैं अपितु अपने निःस्पृह कथावाचकों के माध्यम से सारे लोक को आलोकित कर रहे हैं ।

बाल–साध्वियों द्वारा नित्यसत्संग

सैकड़ों की संख्या में देश के विभिन्न क्षेत्रों से आयी भगवती बाल साध्वियाँ श्री बाबा महाराज की वाणी से उपकृत संध्या समय में श्री राधारानी के करकमलों से निर्मित गहवरवन के रसकुंज में नित्य ब्रजवासियों को भगवत्कथा का पान कराती हैं । सुसंस्कारों को प्रदान करने के इस लोकपावन कार्यक्रम में स्थानीय गाँव के श्रोताओं के अतिरिक्त परिक्रमा करने वाले सैकड़ों भक्त सम्मिलित हो अपने को कृतार्थ मानते हैं । छोटी–छोटी बालिकाएँ जो अपनी अलौकिक प्रतिभा से भौतिक जगत की चकाचौंध से दूर रहकर जनमानस को सुसंस्कार प्रदान करती हैं ।

नित्य महारास

ब्रज की अपनी एक अलग पहचान है । ब्रज की बोली, ब्रज की वेशभूषा, ब्रज का संगीत जो अपनी उत्कृष्टता से समस्त राष्ट्र को आकर्षित करता है । वही आज भौतिक जगत की अत्याधुनिक छाप से अपना स्वरुप खो रहा है। पहनावे के नाम पर जहाँ भगवान् कृष्ण की ब्रजबालाएँ आज चुनरी–लहंगा को छोड़कर शहरी वेशभूषा का अनुसरण कर रही हैं । इसी ब्रज–पहचान को न केवल बाबा महाराज ने बचाया है अपितु उस पुरातन स्वरुप की ओर समग्र राष्ट्र का ध्यानाकर्षित किया है, नित्य संध्या होने वाले दैनिक कार्यक्रम में ब्रज के पुरातन स्वरुप के समस्त परिधानों से युक्त मानमंदिर की सैकड़ों साध्वियाँ नित्य ऐसा नृत्य करती हैं जिसे देखकर लगता है पाँच हजार वर्ष पुरानी गोपियाँ अपने प्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण को रिझा रही हों । उस समय बाबा महाराज का पदगायन साक्षात् दिव्यलोक का अनुभव कराता है । इस रसोमय कार्यक्रम से नित्य हजारों दर्शनार्थी तो लाभान्वित होते ही हैं, इंटरनेट के माध्यम से देश–विदेश के नागरिक भी लाभान्वित होते हैं । ■

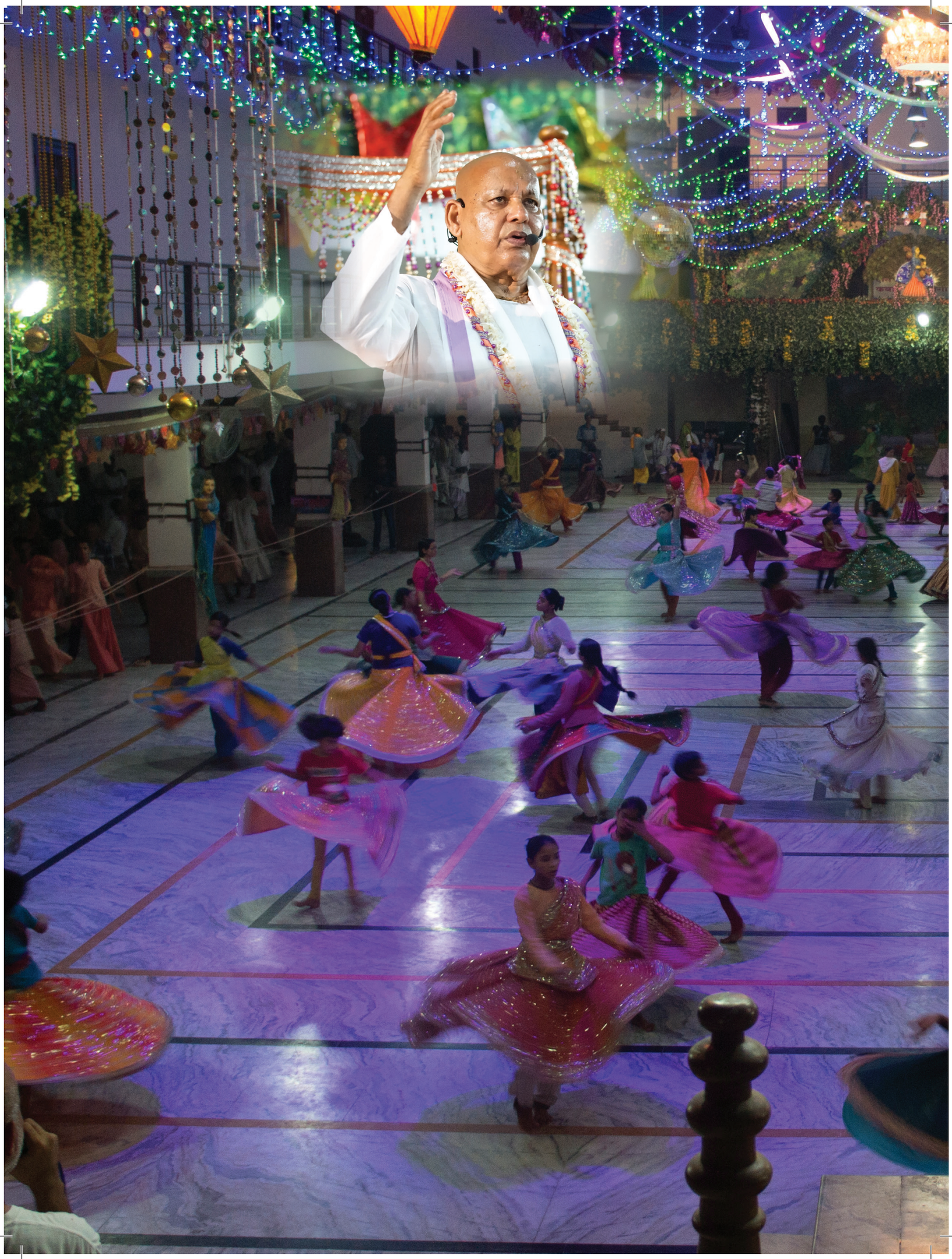

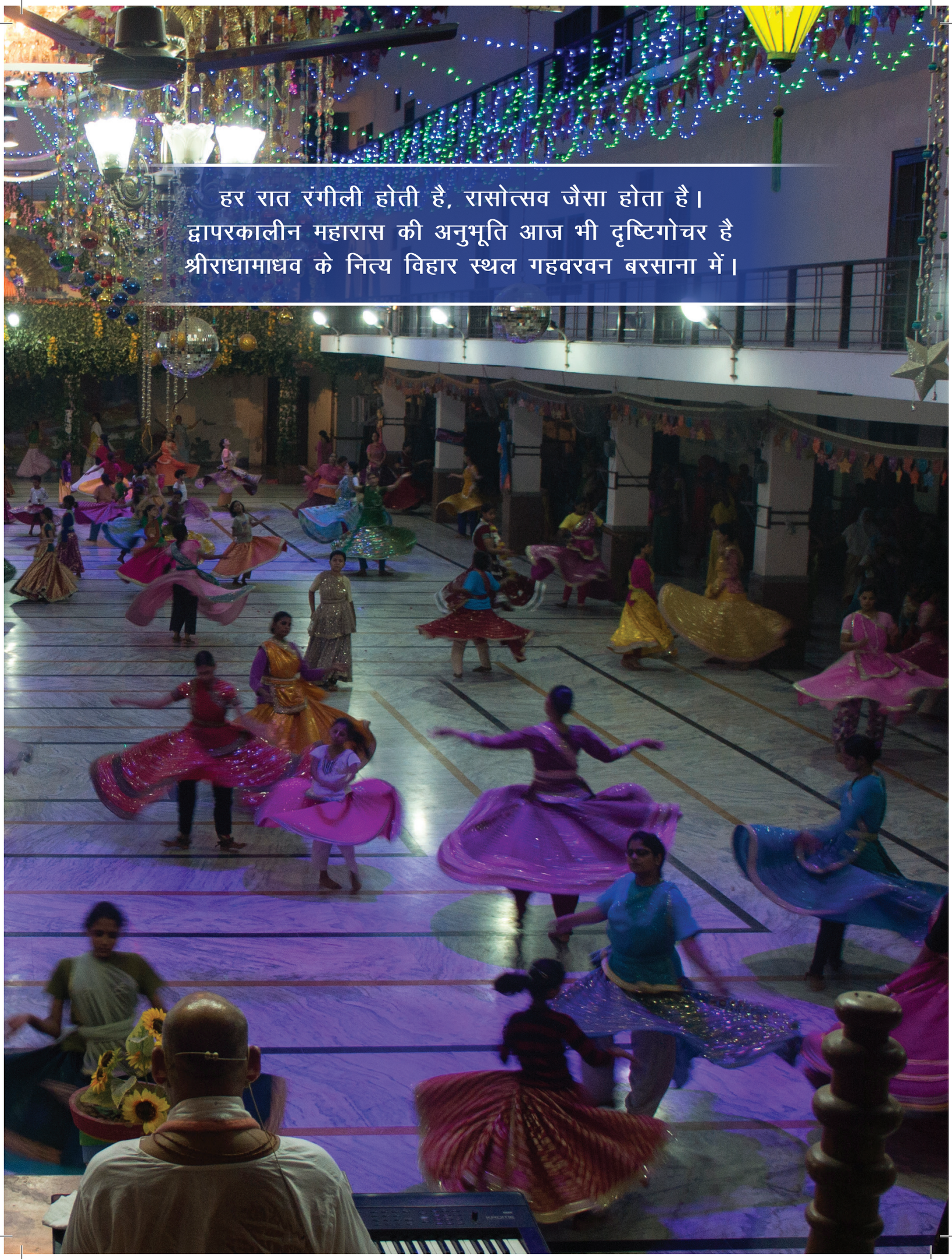
हर रात रंगीली होती है, रासोत्सव जैसा होता है।
द्वापरकालीन महारास की अनुभूति आज भी दृष्टिगोचर है
श्रीराधामाधव के नित्य विहार स्थल गहवरवन बरसाना में।

"नाँचि–गाय रासहिं मिले"

(संत श्रीध्रुवदास जी)

.....रास–रासेश्वर के प्राप्ति की रसोपासना है – नृत्य–गान, जिसके स्मरणमात्र से ही ब्रजेन्द्र रसिकशेखर श्यामसुन्दर की ब्रजलीलार्णव में मन निमज्जित होने लगता है ।

ब्रज–रस–माधुर्य का प्राकट्य ही 'नृत्य–गायन' से होता है। अधिक क्या कहा जाय, जिस रस का रसास्वादन करने के लिए स्वयं पूर्णतम–पुरुषोत्तम ने अपनी ऐश्वर्यमयी भगवत्ता को छोड़ दिया और एक साधारण गोपबालक बनकर गोपी–ग्वालों के साथ नाचे–गाये । महारास लीला इसी ललित कला से अभिसिंचित है ।

अतः ये 'प्रेमाराधन' ब्रज की उपासना–संस्कृति–सभ्यता का आधार है । साधकों का अनुपम रसाराधन एवं ब्रजरसिकों का तो प्राणजीवन ही है । यहाँ तक कि इसके लिए शंकरजी गोपी बने और महारास में प्रवेश पाया । इसी आराधन से नरसी जी ने महारास दर्शन किया और मीराबाई तो विलीन ही हो गईं रासेश्वर में ।

अतः यह कहना उचित ही है कि जिस ब्रजरस की प्राप्ति योग, जप, तप, ध्यान, समाधि आदि क्लिष्ट साधनों द्वारा नहीं होती, वह 'नृत्य–गान' के द्वारा सहज सुलभ हो जाती है ।

स्वयं श्रीठाकुरजी ने इस 'रसमय आराधन' का यशोगान करते हुए कहा – "हे पार्थ ! ये सत्य कथन है कि जो मेरी सन्निधि में नाम–संकीर्तन एवं नृत्य करता है, उसके द्वारा मैं खरीद लिया जाता हूँ ।"

गीत्वा च मम नामानि नर्त्तयेन्मम सन्निधौ ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन ।।
(आदिपुराण)

कलियुग में एकमात्र रसप्रद आराधन 'नृत्य–गान' द्वारा अपने आराध्य को रिझाया अनुरागी भक्तों ने –

नाँचत गावत हरि सुख पावत ।
नाँचि गाइ लीजै दिन द्वै, पुनि काल दिन आवत ।।
नाँचत नाऊ, भाट, जुलाहौ, छीपा नीकै गावत ।
पीपा अरु रैदास विप्र जयदेव सुभलैं रिझावत ।।
नाँचत सनक सनन्दन अरु शुक नारद, सुनि सचु पावत ।
नाँचत गन गन्धर्व देवता, व्यासहि कान्ह जगावत ।।
(श्रीहरिरामव्यास जी)

जैसे प्रेमी भक्त नाचते–गाते हैं, वैसे योगीजन नहीं कर सकते, तभी तो सूरदास जी ने कहा है – "सूर स्याम की या छवि ऊपर झूठो जोग ग्यान को भटकन ।" श्रीव्यास जी भी कहते हैं कि हमने कभी भी योग–ध्यान नहीं किया, केवल श्रीकृष्णलीला–भूमि में नाचने–गाने से ही महारास में प्रवेश पा लिया ।

नैन न मूँदे ध्यान कौं, अंग न कीन्हे न्यास ।
नाँचि–गाय रासहिं मिले, बसि वृन्दावन व्यास ।।

जब जीव इस रसप्रद साधन को करता है तो वह बिना किसी प्रयत्न के सांसारिक वासनाओं से अकाम होकर परमसाध्य श्रीरासबिहारी की प्राप्ति कर लेता है । सभी रसोपासकों ने इसी 'रसाराधन' का आश्रय लिया । मीराबाई जी की श्री नाभा जी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की– 'सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ ।" मीराबाई ने 'अतिनिडर' हो लोक–वेदादि की सब मर्यादायें तोड़कर अपने गिरधरलाल को इसी प्रेमाराधन से रिझाया । एक पद में नाचते समय मीराबाई कह रही हैं –

तेरो कोई नहीं रोकनहार मगन होइ मीरा चली ।
लाज सरम कुल की मरजादा सिर सैं दूर करी ।।
मान–अपमान दोऊ धर पटकै निकसी ग्यान गली ।
ऊँची अटरिया लाल किवरिया निरगुण सेज बिछी ।।

"कृष्ण भाव में नाचने वाले को संसार में रोकने वाला कोई नहीं है । लज्जा–शर्म, कुल की मर्यादायें आदि ये सिर का बोझ (भार) हैं, नाचते समय इस गट्ठर को फेंककर मान–अपमान की परवाह छोड़कर कृष्ण–प्रेम रूपी गली में निकल पड़ो । ये गुणातीत प्रेम

है, इससे गुणातीत हो जाओगे एवं शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, श्रृंगार आदि पाँचों रस मिलने से प्रेमपुष्प मिल जाएगा । जो कृष्ण प्रेम में नाचता है उससे सारे ब्रह्माण्ड की शोभा होती है । जिनमें ऐसी प्रेमा भक्ति नहीं है वो जीवित होते हुए भी मुर्दे हैं । मीरा कहती है – ये बड़ी शुभ घड़ी है, मैं जा रही हूँ गिरधर के संग नाचने (वही सबसे शुभ घड़ी है जब भक्त प्रेमोन्माद में नाचता है), और कहती हैं कि योगियों की जो सुषुम्ना जागती है वह तो मेरे नृत्य करने से ही जाग गई है । संसारी लोग जो भक्ति में बाधा देते हैं, उन्हें तत्क्षण छोड़ देना चाहिए ।" इसीलिए मीराबाई के गोपीभाव भावित आराधना का प्रत्यक्ष चमत्कार हुआ कि वह ठाकुरजी के श्री विग्रह में समाहित हो गयीं ।

नाचत घुँघरू बाँध कै, गावत लै करताल ।
देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार ।।

एक स्त्री मीरा लोक–लाज छोड़कर गिरिधर गोपाल के सामने खुलेआम 'उन्मादवन्नृत्यति' पागल की तरह नृत्य करती थी । थोड़ा–बहुत नाच लिया, वो नाचना नहीं है । जो भगवान् के समक्ष पागल की तरह नृत्य करता है, संसार की परवाह नहीं करता, वह भगवान् को जीत लेता है । संसार की परवाह करोगे तो संसार तो बुराई ही करेगा । चौतन्य महाप्रभु जी अलात चक्र की तरह इतने वेग से नाचते थे कि उनका शरीर तक दिखाई नहीं पड़ता था ।

महाप्रभु जी स्वयं कहा करते थे –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहु सुभक्तितः ।
स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेष्वपि ।।
(स्कन्द पु. ७.४.२३.७४)

भगवान् के सामने जो नाचता है, उसके सैकड़ों कल्प के पाप जल जाते हैं, उसे कोई प्रायश्चित आदि करने की जरूरत नहीं है, केवल भगवान् के सामने नृत्य कर लो । जब निष्किञ्चन भक्त भगवान् के सामने नाचता है तो वह संसार को पवित्र करता है 'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति' उसके नृत्य से तीनों लोक पवित्र हो जाता है ।

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ।।
(भा. ११.१४.२४)

"अत्यानन्देन उन्मत्तवन्नृत्यति लोकबाह्यः लोकानां हास्यप्रशंसासम्मानावमानादिष्वधानशून्यः ।"
(श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिकृत 'सारार्थदर्शिनी')

भगवान् का भक्त कीर्तन कर रहा है, वाणी गद्गद् है, चित्त द्रवित हो रहा है, कभी तो विरह में रोता है, कभी आनन्द में हँसता है और लज्जा छोड़कर के गाता है, पागल की तरह नाचता है, ऐसा भक्त सम्पूर्ण संसार को पवित्र कर देता है ।

भगवान् के सामने नृत्य करना सबसे बड़ा यज्ञ है । नृत्य अपने इष्ट से तदाकार कर देता है यानि इष्टमय कर देता है । नाचने वाला कभी वृद्ध नहीं होता है, जब नृत्य छोड़ देता है तब वृद्ध होता है । यहाँ तक कि नृत्य करने की सलाह तो बड़े–बड़े डॉक्टर भी मरीजों को देते हैं । नृत्य करने वाला निरोग रहता है और इतनी वीरता आ जाती है कि स्वर्ग–नरक से नहीं डरता है । नृत्योपासना से लोक–परलोक सुधरते हैं दृ संसार के त्रितापों से मुक्ति मिलती है और प्रेमाभक्ति की नित्यनवीन वृद्धि होती है । भावपूर्वक ढंग से नृत्य करने से इष्ट का आवेश आ जाता है, इष्ट उतर आता है शरीर में । पद्मपुराण में कहा गया है –

पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलं दिवः ।
बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः ।।

"भक्त जब प्रभु को रिझाने के लिए नृत्य करता है तो उसके पाँवों के ठुमके से पृथ्वी के पाप जल जाते हैं, जब नाचते–नाचते वह देखता है तो दसों दिशाओं के पाप जल जाते हैं और जब नाचते–नाचते हाथ उठाता है तो आकाश के सभी पाप, विपरीत परमाणु आदि जल जाते हैं ।"

नर्तनं कुरुते यस्तु केशवाग्रे नरोत्तमः ।
न फलं हीयते तस्य आजन्ममरणान्तिकम् ।।
(पद्म. उत्तर. ३८.१६)

जो नरश्रेष्ठ भगवान् के समक्ष नृत्य करता है, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसका फल क्षीण नहीं होता अर्थात् उसके सभी कार्य सफल होते हैं । नृत्याराधना वाला साधक अतिशीघ्र सांसारिक लज्जा, संकोच, भय, देहाध्यास को छोड़कर अपने प्राण–प्रियतम की प्राप्ति कर लेता है ।

इसलिए मन लगे चाहे न लगे, लज्जा–शर्म छोड़कर निष्ठापूर्वक भगवान् के सामने नृत्य करना चाहिएय क्योंकि नृत्य से शरीर के ही नहीं बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड के पाप भी जलते हैं, इस नृत्यमयी आराधना से समग्र संसार का कल्याण होता है । यह सबसे बड़ा यज्ञ है । इसलिए सभी लोगों को भगवान् के सामने श्रद्धा के साथ नाचना चाहिएय लेकिन हम लोग मूढ़ हैं, संसारी लोगों को रिझाने के लिए नाचते हैं, अरे ! इन संसार के मुर्दों को क्या रिझाना, अगर रिझाना ही है तो प्रभु को रिझाना चाहिए । जिनके रीझ जाने पर पुनः इन चौरासी लाख योनियों में नहीं नाचना पड़ेगा ।

अस्तु इस कलियुग में रास–रासेश्वर की प्राप्ति का सरल, सहज, सरस व सुलभ साधन है दृ 'नृत्य–गान' । इसलिए हम लोग इस रसोमयी आराधना से वंचित न रहें । ■

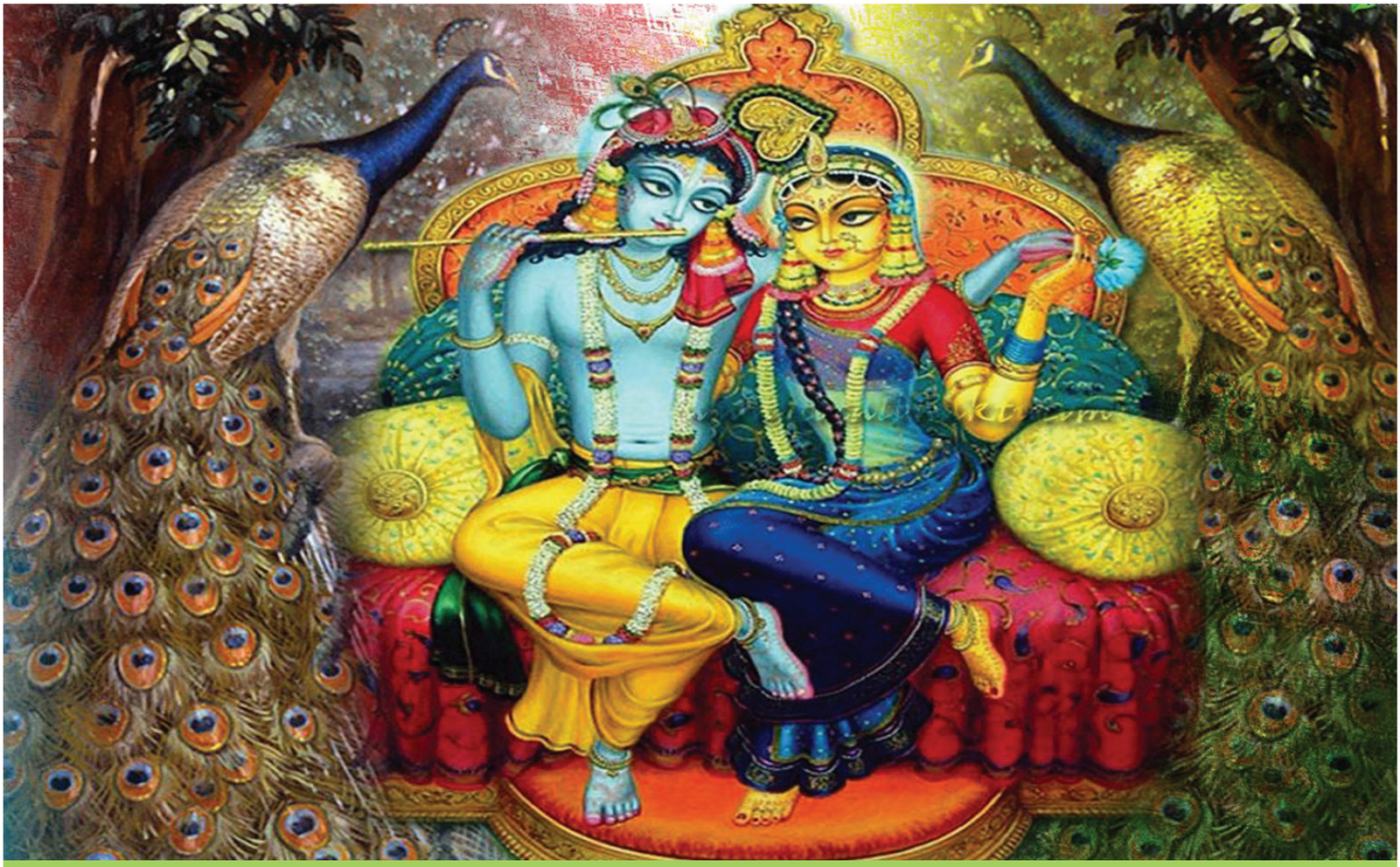

एकं सद् विप्राः वहुधा वदन्ति

(श्रीभक्तशरणजी महाराज)

'एकं रूपं वहुधा यः करोति'

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'

'अजायमानोबहुधाव्विजायते'

'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'

इन श्रुति–स्मृति वाक्यों के अनुसार वही एक परमतत्त्व विविध भाषा–शैलियों में व अनुभूतियों में विभूतियों के द्वारा वर्णित व अनुभूत है । कोई ज्ञानपथावलम्बी है, कोई भक्ति मतावलम्बी है, कोई योगाश्रयी है, सभी पथों के द्वारा प्राप्य वह परतत्त्व ही है । अतः पुष्पदन्ताचार्य लिखते हैं –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।

(शिवमहिम्नस्त्रोत्रम् ६)

जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न–भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे नाथ ! भिन्न–भिन्न रुचि के अनुसार अनेकविध सरल व कठिन मार्गों से जाने वाले लोग अन्त में आपमें ही आकर मिल जाते हैं । विविध मार्गों के द्वारा गम्य उसी परमार्थ तत्त्व का निर्देश भागवत में किया गया है –

वदन्ति तत्त्वत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।

(भा. १.२.११)

तत्त्ववेत्ता लोगों के द्वारा वह अद्वय सच्चिदानन्द स्वरुप ज्ञान ही तत्त्व शब्द से अभिहित है – सजातीय विजातीय स्वगत भेद

शून्य, स्वतः सिद्ध सत्ताक भगवान् श्रीकृष्ण ही अद्वय ज्ञान तत्त्व है । श्री राम नृसिंहादि सब भगवत्स्वरूप उन परब्रह्म श्रीकृष्ण की भाव वैचित्री के भाव विग्रह हैं । अतः उनमें सजातीय भेद नहीं है, जीव जगत परब्रह्म की शक्तियों के अंश होने से उनमें विजातीय भेद भी नहीं है, और देह–देही भेद रहित होने से श्री कृष्ण स्वगत भेद शून्य हैं –

'देह देही विभागोऽयं ईश्वरे नैव विद्यते ।'

(मत्स्य पुराण)

अतः जीव सदृश (चेतन) होने पर भी तथा जगत असदृश (जड़) होने पर भी स्वयं सिद्ध न होने के कारण वे परब्रह्म श्री कृष्ण ही अद्वयज्ञानतत्त्व हैं और वह एक ही परतत्त्व ब्रह्म, परमात्मा व भगवान् पदवाच्य है । प्रस्तुत पद्य की व्याख्या में श्रीधर स्वामी जी लिखते हैं – "उपनिषदैर्ब्रह्मेति हैरण्यगर्भैः परमात्मेति सात्वतैर्भगवानिति शब्द्यते अभिधीयते" अर्थात् वही अद्वयज्ञानतत्त्व उपनिषद वर्णित विशेषण हीन विशेष्यमात्र के साथ सायुज्य मुक्ति चाहने वाले ज्ञानी जनों के द्वारा – काम्य निषिद्ध कर्म परित्यागपूर्वक, नित्य नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, उपासना चतुर्विध कृत्य कर्मों का सम्पादन करते हुए साधन चतुष्टय अर्थात् नित्यानित्य वस्तु विवेक, ऐहिक आमुष्मिक फल भोग विराग, शमादि षट् सम्पत्ति व मुमुक्षा से सम्पन्न होकर गुरुपसत्ति पूर्वक ब्रह्मसूत्र व वेदान्त वाक्यों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से युक्त होकर ब्रह्मरूप में जिज्ञास्य है, ज्ञेय है –

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।'

(ब्र.सू. १.१.२)

इस वेदान्त सूत्र के भाष्य में भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य जी लिखते हैं, 'अथ' – अर्थात् साधनचतुष्टय सम्पन्यनन्तरं, 'अतः' – यज्ञादि अनित्य फलजनकत्वेन, 'ब्रह्मजिज्ञासा'– ब्रह्मविचारः करणीयः ।

'यज्सात्वामृतमश्नुते'

'तमेव विदित्वामृत्युमेति'

'वरान् प्राप्य निबोधत'

इत्यादि श्रुति वाक्यों में भी ब्रह्म ज्ञेयत्व वर्णित है, अर्थात् तत्त्वान्वेषी ज्ञानियों के द्वारा वही अद्वयतत्त्व ब्रह्मरूप में ज्ञेय है । अतः 'ब्रह्मेति,

'परमात्मेति' – और वही परतत्त्व योगाश्रयीयों के द्वारा सविधि योगाङ्ग परिपालनपूर्वक, अन्तर्यामित्वादि कतिचित् गुणगण विशिष्ट परमात्मस्वरुप में उपास्य है ध्येय है । जीव गोस्वामी जी लिखते हैं – "अन्तर्यामित्वमय मायाशक्ति प्रचुर चिच्छक्त्यंश विशिष्टं परमात्मेति" (क्रम सन्दर्भ)

'भगवानिति' – अर्थात् वही ज्ञानियों का ज्ञेय, योगीजनों का ध्येय, परतत्त्व भक्तों के लिए श्रवण–कीर्तनादि नवधा भक्ति के द्वारा अचिन्त्यानन्त सौन्दर्य सार सर्वस्व सुधासिन्धु सगुण साकार विग्रह में प्रकट होकर गेय व पेय हो जाता है । ज्ञेय और ध्येय की अपेक्षा गेय और पेय में सारल्य है, सौरस्य है, माधुर्य है । गेय से तात्पर्य गाने योग्य, कुन्तीमाता कहती हैं –

'शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।'

(भा. १.८.३६)

हे नाथ ! आपकी दिव्यातिदिव्य रसमयी ललित लीलाओं को जो निरन्तर भक्त लोग सुनते हैं, गाते हैं, कहते हैं । तब आप कीर्त्यमान, गीयमान, भगवान् शीघ्र ही भक्तों के मध्य में आविर्भूत हो जाते हैं, 'सः कीर्त्यमान शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्' – (ना.भ.सू. ८०) यह स्वानुभव का सूत्र नारद जी ने लिखा है । और जब भगवान् आविर्भूत होते हैं तब उस दिव्यातिदिव्य अचिन्त्यानन्तकोटिकन्दर्पदर्पदमनपटीयान साक्षान्मन्मथ मन्मथ स्वरुप की मधुरिमा का अपने अपरिश्रान्त नेत्र चषकों से निरन्तर वह भक्त पान करता है । मधुवन में श्री ध्रुव जी महाराज की अवस्था का चित्रण करते हैं श्री शुकदेव जी महाराज –

'दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्भक–
श्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ।।'

(भा. ४.९.३)

अर्थात् श्री ध्रुवजी महाराज के समक्ष जब ठाकुर जी प्रकट होते हैं, तब अपने निर्निमेष नयनों से निरन्तर निहारते हुये ध्रुव जी ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो उस अगाध सौन्दर्यमाधुर्य–लावण्य–सुधा–सिन्धु को अपने नेत्र चषकों से पान ही कर जायेंगे ।

यह है दिव्य पेय ब्रह्म, जिसका निरन्तर पान करते जाओ कभी तृप्त ही नहीं होते नेत्र युगल । गोपियों को तो इस दिव्य रूपासव का पान करते हुए निमेष मात्र का व्यवधान भी असह्य हो जाता है, अतः ब्रह्मा को कहतीं हैं 'जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्' अरे ! यह विधाता बड़ा जड है, यह प्रेम की परिभाषा से सर्वथा अपरिचित है । प्रतीत होता है जड कमल की संतान होने के कारण इसमें भी जडता का संचार हो गया है, अथवा हमारे नित्य श्री कृष्ण संदर्शन रूप सद्भाग्य से अमर्ष हो गया है, यह दर्शनानन्द असह्य हो गया है इसके लिए, अतः सामर्ष विधाता ब्रह्मा ने इस दिव्यानन्द में अवरोध उत्पन्न करने के लिए ये बैरिन पलकें बना दीं ।

पलकैं बैरिनि बैर परीं ।
श्री स्याम नवरंग बिहारी निरखत नैननि आनि अरीं ।।
यह बिधि नै कछु भली न कीन्ही जो वरुनी दृग लाइ धरीं ।।
ललित किशोरी माती अँखियाँ जुगुल अंग अकुलात खरीं ।।

यह है भक्तों के भगवान् के माधुर्य का दिव्यानन्द, अतः 'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते' –

यद्यपि लक्षण ऐक्य से वस्तु का ऐक्य होता है, नाम के अनेकत्व से वस्तु का अनेकत्व नहीं होता – लक्षण एक है तो लक्ष्य भी एक है –

यह लक्षण तो एक ही है – 'अद्वयं यज्ज्ञानं तदेव तत्त्वम्' केवल नाम ही तीन हैं । परन्तु लक्षण में ऐक्य है दृ अतः ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते' नाम मात्र से उसका पार्थक्य कैसे हो ? वस्तु में पार्थक्य नहीं है दृ पार्थक्य है दृ उसकी अनुभूति में, आस्वादन में, आनन्द में, आराधन पद्धति में –

अतः वैष्णवाचार्यों ने तो बड़ी ही अद्भुत वैदुष्यपूर्ण भावमयी विवेचना की है । वे कहते हैं – अद्वय ज्ञान यह तो ठीक है परन्तु ब्रह्म जो है वह अत्यन्त बहिरंग है । बहिरंगों को बहिरंग ब्रह्म का ही दर्शन होता है । ब्रह्म से अन्तरंग है 'परमात्मा, जो अन्तरंग होते हैं वे परमात्मा को समझ पाते हैं और परमात्मा से भी अन्तरंग हैं, अचिन्त्यानन्तकल्याणगुणगणनिलय कन्दर्पकोटिकमनीय पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, जो अत्यन्त अन्तरंग होते हैं उनको भगवान् का अनुभव होता है । इस तरह उसी तत्त्व को भगवान्, उसी को परमात्मा, उसी को ब्रह्म कहते हैं – दृष्टांत के रूप में महाकवि माघ विरचित शिशुपालवध का पद्य उद्धृत करते हैं ।

चयास्त्विषामित्यबधारितं पुरा
ततः शरीरीति विभाविताकृतिम् ।
बिभुर्विभक्तावयबं पुमानिति
कृमादमुं नारद इत्यबोधिसः ।।

(शिशुपालवध १.२)

अर्थात् श्री नारदजी सुधर्मा सभा में आकाश से उतर रहे थे, जब वे दूर थे, तब द्वारकावासियों ने कल्पना की कि यह कोई महातेजपुञ्ज ही है । कुछ और समीप आने पर शरीरवान् प्राणी समझा । अधिक समीप आने पर अङ्ग–प्रत्यङ्गों की स्पष्ट प्रतीति हुई – कोई पुरुष है ऐसा समझा और अधिक निकट होने पर उन्हें नारद जी का स्पष्ट ज्ञान हुआ । इस तरह यदुवंशियों को दूर से तेजः पुञ्ज का दर्शन हुआ दृ समीप से शरीरी पुमान् का बोध हुआ और अत्यन्त समीप से नारद जी का बोध हुआ दृ इसी तरह जो अत्यन्त दूरस्थ हैं उन्हें वह चिन्मय, बोधमय, अखण्ड बोध स्वरुप ज्ञेय ब्रह्म भासित होता है, जो कुछ समीप आते हैं, उनके लिए वही केवल बोध स्वरुप नहीं अपितु सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायकत्त्वादि अनेक गुणों से युक्त ध्येय परमात्म स्वरुप में अनुभूत होते हैं और जो अत्यधिक समीपवर्ती हैं, अन्तरंग भक्त हैं, उन्हें अचिन्त्यानन्त कल्याणगुणगणोपत अनन्तकन्दर्पदर्पदमनपटीयान सौन्दर्य सार सिन्धु भगवान् श्री राम कृष्ण के रूप में अनुभूत होते हैं ।

तात्पर्य – वह एक ही तत्त्व – उपासक की उपासना के अनुरूप भावना के अनुरूप – ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् के रूप में अनुभूत होता है और वह भक्त अपनी अनुभूति के आधार पर अपनी भाषा शैली में – यथामति, यथारुचि (सगुण, निर्गुण) के अनुसार वर्णनकर अपनी वाणी को पवित्र करता है और अन्त में अपने उपास्य में ही गति को प्राप्त होता है। ■

परम श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा रचित 'रसिया रासेश्वरी' पुस्तक से

हमकूँ कहा और सौं काम, हमारी राधे महारानी ।।
जाके बल हरि रास रचायो
जाके बल रसराज कहायो
जाके बल हरि बेनु बजायो
जाके चरनन की सेवा हरि करैं भाग मानी ।
गहवर वन राजैं श्री राधा
कृष्ण प्रेम रस सार अगाधा
जाके नाम कटैं सब बाधा
श्री बरसानो नित्य धाम वृन्दावन रजधानी ।
धन–दौलत की आस नेंक ना
विषय भोग सौं गरज नेंक ना
मुक्ति हू की चाह नेंक ना
प्रेम पंथ में देखैं ना हम राजा और रानी ।
शब्द ब्रह्म नूपुर रव व्यापक
पद–नख पार ब्रह्महि प्रकाशक
पद–रज परा भक्ति कौ दायक
कर्म धर्म अन्याश्रय छाड्यो कृपा देओ दानी ।।

समस्त समस्याओं का निदान - गौ सेवा से

('रसीली ब्रजयात्रा' पुस्तक से)

आर्थिक समृद्धि का मुख्य स्रोत है – गाय । देश की लगभग ८० प्रतिशत जनता कृषि जीवी है, वह कृषि पूर्णरूपेण गौ पर अवलंबित है । गोमय से बढ़ती है पृथ्वी की उर्वरा शक्ति । गोबर की खाद से उत्पन्न अन्न से न केवल शरीर अपितु मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ भी शुद्ध, स्वच्छ व शक्तिसंपन्न होती हैं ।

"अन्नशुद्धौ सत्वशुद्धि, सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति...."

आज भी गौवंश की उपेक्षा न करके उसी से कृषि कार्य सम्पादित हो तो न गौवध हो, न जनवध । आज की मँहगाई ने जनवध कर दिया । डीजल, पेट्रोल की आए दिन मँहगाई वृद्धि रत है, क्या आवश्यकता है डीजल, पेट्रोल की? गोबर गैस से सब कार्य क्यों न किये जायें? गोबर गैस से चलित वाहन आज तेजी से हो रहे वायु प्रदूषण पर भी रोक लगायेगा किन्तु देशद्रोहियों को बताने पर भी न अपना लाभ दिखाई देता है न देश का !

हमारी भूमि का अधिकांश भाग बंजर दिख रहा है । उससे शनैः–शनैः ऐसी स्थिति आ जाएगी कि प्रजा अन्न–दाने के लिए तरस जाएगी । चारों और दुर्भिक्ष ही दुर्भिक्ष होगा।

विशुद्ध भाव से हमें गौसेवा करनी चाहिए । इसके निमित्त प्राप्त धन का दुरूपयोग हमें नारकीयता में ले जायेगा । गाय जब अपने दूध से अपना स्वार्थ नहीं रखती तो हम गौ सेवा के धन से अपनी स्वार्थ पूर्ति करें यह उचित नहीं।

"गावो विश्वस्य मातरः"

गाय किसी व्यक्ति विशेष की नहीं सम्पूर्ण विश्व की माँ है अतः सम्पूर्ण राष्ट्र का परम धर्म है गौ वध निवारण व गौ सेवा । कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के २६२६ में गौरक्षा पर राजा को पूर्ण रूपेण ध्यान देने का निर्देश किया है । अशोक के शिला लेखों में गौहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध द्रष्टव्य है ।

बदाउनी ने लिखा है कि हिन्दुओं तथा जैनियों के प्रभाव से अकबर के राज्य में कोई भी गौ वध नहीं कर सकता था । बी. ए. स्मिथ ने अपने इतिहास प्र.–१०१ पर जहाँगीर के विषय में यहाँ तक लिखा है कि वह जान या अनजान में भी गौहत्यारों को फांसी पर लटकाने में नहीं हिचकता था । महात्मा गाँधी, स्वामी करपात्री जी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, हनुमान प्रसाद पोद्दार जी (भाई जी) ने भी प्रयास किया भारत में पूर्णतः गौवध बन्द कराने का किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है जो अंधे शासक अपने लाभ को न

देख पाने के कारण विनाश की ओर बढ़ रहे हैं गौरक्षक के नाम पर गौभक्षक बन रहे हैं । ऐसी स्थति में पवित्राचार, श्री, ऐश्वर्य एवं शांति स्थापन देश में कदापि सम्भव नहीं है । जब तक भारत में गाय का आदर था, दूध–दही की नदियाँ बहती थीं, देश में शांति थी, देवता भी यहाँ जन्म लेने को लालायित रहते थे । स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी तो केवल घृत पान करने के लिए पुरुरवा के साथ भारत में बहुत दिनों तक रही । राजा मरुत के यज्ञ में देवगण स्वयं परिवेषण कार्य करते थे, विश्वेदेव सदा सभासद बनकर रहते । गौ सेवक गोविन्द का सर्वाधिक प्रिय बन जाता है यह तो निश्चित है ही ।

१०वीं शताब्दी तक भारत वर्ष गौवंश के लिए स्वर्ग की भाँति था । महमूद गजनवी के आक्रमण से (९९ से १०३० ई.) पूर्व मुसलमान सूफी संत भारत में आकर साधन करने लगे थे । गाय को बड़ा आदर देते थे । बाबर (१५२६ से १५३०) की दूरदर्शिता ने बहुसंख्यक समाज की इस बद्धमूल भावना को परखा । इस्लाम भी इस धर्म के विरुद्ध नहीं अतः भारत में गौहत्या बन्द कराई ।

अकबर (१५४२–१६०५) ने भी गौवध बन्द करा दिया । १८वी शताब्दी से कानून कुछ बदलने लग गए । १९वी शताब्दी में माँस भक्षण को स्थायित्व दे दिया विज्ञान ने । इसके लिए गौवध उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा । १९०५ में गौरक्षा का प्रश्न उठा तो यही कहा गया कि अंग्रेज मांसभक्षी हैं, इन्हें जल्द से जल्द देश से निष्कासित किया जाए । उस समय गाँधी जी ने यहाँ तक कहा – हम स्वतंत्रता के लिए कुछ समय प्रतीक्षा भी कर सकते हैं किन्तु गौहत्या होना हमें एक दिन भी सहन नहीं होगा । आज भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु गौवध बन्द न हुआ । जब भारतीय ही गौवध करेंगे तो इस पर रोकथाम लगाने के लिए इटैलियन या अमरीकी नहीं आयेंगे । भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली भूमि अन्यत्र नहीं है ।

"गावो विश्वस्य मातरः" वेदों में गाय को सारे संसार की माता कहा गया । ऐसा क्यों कहा गया? क्योंकि हर व्यक्ति की माँ अलग–अलग होती है सभी की जन्मदात्री सभी योनियों में अलग–अलग होती है और वह अपने दूध से अपने शिशु का पोषण करती है । जन्मदात्री को जननी कहा गया वह जननी जन्मदात्री होते हुए भी केवल थोड़े दिन ही अपने दूध से शिशु का पोषण करती है कुछ दिन बाद उसका दूध सूख जाता है और प्राणी मात्र के पोषण के लिए गौ माता का आश्रय करना पड़ता है । जिसका दूध कभी नहीं सूखता है । मनुष्य जीवन की अंतिम श्वास तक गौ माता के दूध से पोषण होता है । जन्म देने वाली माँ सदा पोषण नहीं कर सकती है केवल अपने से उत्पन्न शिशु का पालन थोड़े दिन कर सकती है किन्तु गौ माता संसार के सभी प्राणियों का पोषण करती है । अपनी माता बच्चे से सेवा का भी स्वार्थ रखती है जबकि गौमाता निःस्वार्थ भाव से दूध दान करती है । ऐसी संसार की जननी गौ माता को मारना अपनी सैकड़ों जननियों से ज्यादा घृणित है मातृभक्ति की दृष्टि से ही नहीं कृतज्ञता की दृष्टि से भी गौ हत्या करना पाप है । अपनी माँ (जन्मदात्री) का मल–मूत्र कभी पूज्य नहीं हो सकता और वह मल रोग कारक और विषाक्त होता है । उसमें घातक रोगाणुओं की भरमार रहती है किन्तु गौमाता का गोबर मल नहीं वरन श्रेष्ठ है निर्दूषज है रोग नाशक है किसी को खुजली हुई हो गोबर में गोमूत्र मिलाकर लेप कर धूप में बैठ जाओ, सभी खुजली रोग के बैक्टीरिया नष्ट हो जायेंगे । अनुपान के साथ सेवन किया जाए तो विश्व के सभी रोगों पर गौबर–गौमूत्र से उपचार हो सकता है । गोबर से बनी खाद से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्राचीन भारत को सोने की चिड़िया इसलिए कहा जाता था । भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत् हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली अवनि अन्यत्र नहीं हैं । ■

गौमाता की रक्षा

ब्रजाराध्य श्रीकृष्ण को गायों से जितना प्रेम था उतना किसी से नहीं । यही कारण था कि उन्होंने गिरिराज पूजा कराई । गोपालन व गौचारण नंगे पैर किया । गोपाल के ब्रज में आज गायों की दुर्दशा से कोई अनभिज्ञ नहीं है । जिसे भारतवासी माँ कहते हैं वही माँ आज घरों से बाहर दर–दर की ठोकर खाती भटकती है या मांसाहारियों द्वारा दर्दनाक मृत्यु को प्राप्त होकर अस्तित्व को खो रही है ।

संत हृदय नवनीतवत् होता है । इस कारण 'श्री मानमन्दिर' के महाराजश्री ने गौरक्षा का विशेष अभियान २००७ में प्रारम्भ कर एक गौशाला की स्थापना "माता जी गौवंश संस्थान" के रूप में की, जिसमें ब्रज की अनाथ गायें तो पलती ही हैं, इसके अतिरिक्त बाहर से भी गायें यहाँ आती रहती हैं । एकमात्र यह ऐसी गौशाला है जहाँ गायें आती हैं तो मना नहीं किया जाता । ६–७ वर्षों में ही आज उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी गौशाला यहाँ बन गई, जिसमें लगभग ३५,००० गौवंश मातृवत पल रहा है ।

गाय के गोबर, मूत्र के विविध उत्पादों के द्वारा ब्रज वासियों को धन सम्पन्न बनाना, निरोग बनाना, अन्यान्य लाभ दिलाना यह भी संकल्प उक्त संस्था का है, जिस पर कार्य प्रारम्भ हो रहे हैं । ब्रजवासी, ब्रजभूमि, भगवान् सभी का एक स्वरूप है, तीनों की सेवा लक्षित है।

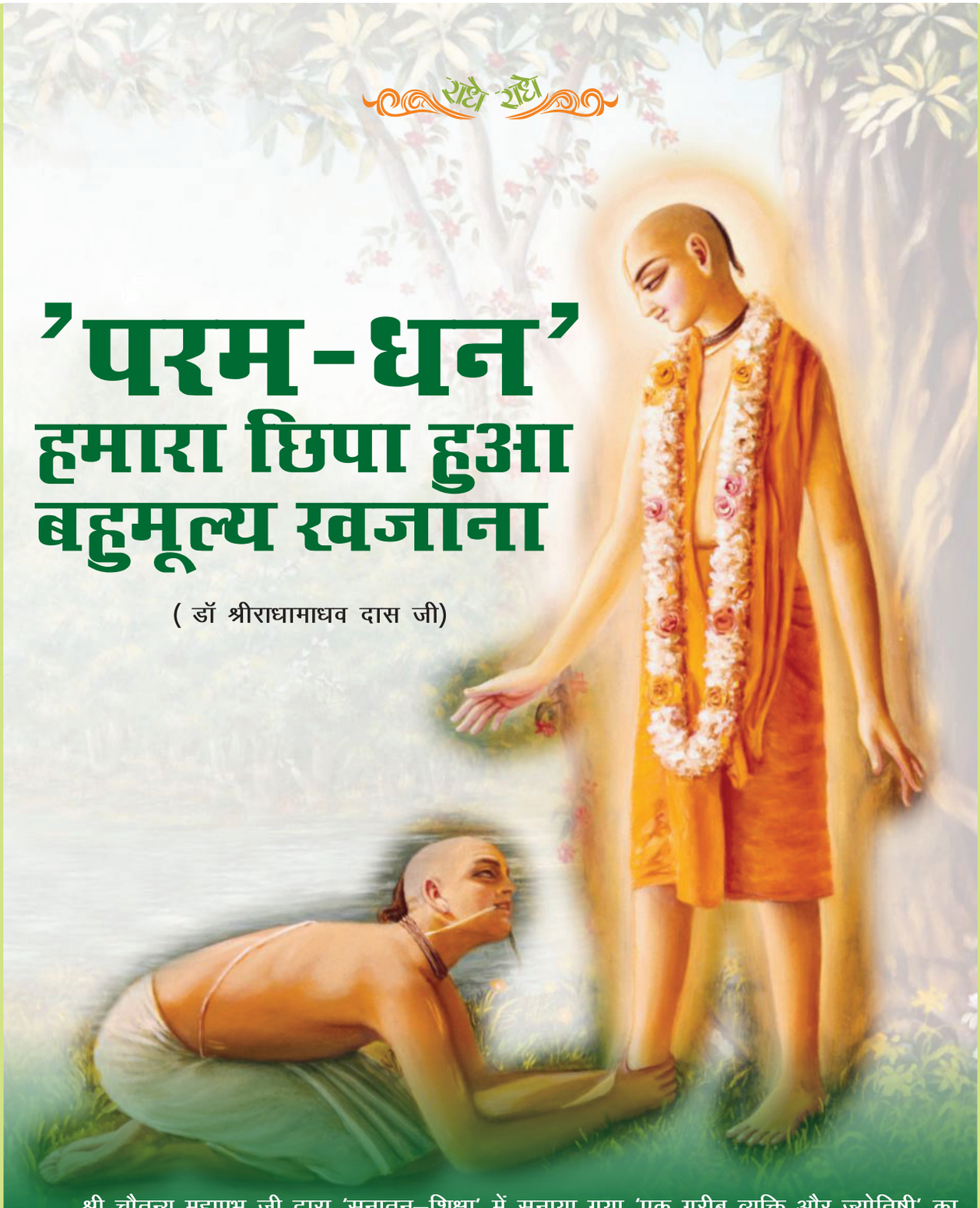

'परम-धन' हमारा छिपा हुआ बहुमूल्य खजाना

(डॉ श्रीराधामाधव दास जी)

श्री चौतन्य महाप्रभु जी द्वारा 'सनातन–शिक्षा' में सुनाया गया 'एक गरीब व्यक्ति और ज्योतिषी' का दृष्टान्त; हमें अपने हृदय में छिपे हुए विशेष खजाने को प्राप्त करने की विधि सिखाता है ।

क्या हम जानते हैं कि हम एक बहुमूल्य सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं ? केवल आवश्यकता है तो यह जानने की, कि सबसे बड़ा खजाना स्वयं हमारे ही हृदय में दबा पड़ा है, बस इसे कैसे खोदा जाए इसकी विधि जाननी होगी ।

आश्चर्यचकित कर देने वाले इस दृष्टान्त का वर्णन श्री चौतन्यचरितामृत (मध्य लीला १२७–१३५) में श्री चौतन्य महाप्रभु जी द्वारा सनातन गोस्वामी को दी गई शिक्षाओं में आता है । श्री चौतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् श्री कृष्ण हैं । जिन्होंने लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व अपने ही आचरण द्वारा श्री कृष्ण–भक्ति की शिक्षा देने के उद्देश्य से बंगाल में अवतार लिया ।

दूसरे शब्दों में, औरों को भक्ति की शिक्षा देने के लिए उन्होंने स्वयं एक भक्त के समान व्यवहार किया, जिससे बद्धजीव इस भौतिक जगत के बंधन से मुक्त होकर अनन्त आध्यात्मिक सुख प्राप्त कर सकें । अपनी लीलाओं के द्वारा श्री चौतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ प्रदान कीं, जिससे कि वे उनके इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार कार्य को आगे बढ़ा सकें । महाप्रभु जी के प्रमुख शिष्यों में से एक थे श्रील सनातन गोस्वामी पाद, जिन्हें स्वयं महाप्रभु जी के श्रीमुख से प्रस्तुत कथा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

ज्योतिषी और निर्धन व्यक्ति –

"इहते दृष्टान्त – येछे दरिद्रेर घरे ।
सर्वज्ञ आसि दुःख देखी पुछये ताहारे ।।"

एक बार 'सर्वज्ञ' नाम का एक ज्योतिषी एक निर्धन व्यक्ति के घर आया । उसकी दीनावस्था को देखकर ज्योतिषी ने उसके दुःखी होने का कारण पूछा और बताया कि जब तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए इतना बड़ा खजाना छोड़कर गये हैं तो फिर भी तुम इतनी गरीबी में क्यों जी रहे हो ।

दुर्भाग्यवश उस निर्धन के पिता की मृत्यु परदेस में हो गई थी और वे अपने खजाने के स्थान के रहस्य को बता नहीं पाए थे । परिणामस्वरुप अपनी विरासत का अता–पता न होने के कारण वह निर्धन व्यक्ति दुःख भोग रहा था । केवल 'सर्वज्ञ ज्योतिषी' के पास छिपे खजाने को ढूँढ़ने की शक्ति और उसे निकालने का पर्याप्त ज्ञान था ।

सर्वज्ञेय वाक्य करे धनेर उड्डेषे ।
आईछे वेद–पुराण जीवे 'कृष्ण' उपदेशे ।।

श्री चौतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बताया कि ज्योतिषी वैदिक साहित्यों का प्रतिनिधित्व करता है जो सर्वोत्कृष्ट खजाना अर्थात् भगवद् प्रेम प्राप्त करने में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं ।

सर्वज्ञेर वाक्य मूल–धन अनुबन्ध ।
सर्व–शास्त्रे उपदेशे, 'श्री कृष्ण' सम्बन्ध ।।

जिस प्रकार ज्योतिषी द्वारा दिए गए अच्छे समाचार से गरीब व्यक्ति की सभी समस्याओं का हल हो गया । वैदिक साहित्य हमारी सबसे बड़ी समस्या – 'आध्यात्मिक गरीबी, अस्थाई भौतिक जगत में हमारे दुःखों का कारण' इसका हल कर सकते हैं । वैदिक साहित्य और शुद्ध भक्त रूपी उनके प्रतिनिधि हमें कृष्ण–भावना स्वीकार करने की सलाह देते हैं । जिससे कि हम अपने आध्यात्मिक पिता परम भगवान् श्रीकृष्ण से अपना सम्बन्ध पुनः स्थापित कर सकें । जिस प्रकार ज्योतिषी के शब्दों ने उस निर्धन का छिपे हुए खजाने के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया, उसी प्रकार वैदिक साहित्य श्रीकृष्ण रूपी सबसे बड़े खजाने के साथ हमारा सम्बन्ध जोड़ देते हैं ।

इस संसार में हमें माया की ठोकरों द्वारा अनेक दुःख प्राप्त करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है । श्री कृष्ण के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए हमें सबसे पहले अपनी इस पतित अवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है । जन्म–जन्मान्तर से माया ग्रस्त होकर हम अनेक प्रकार के शरीर प्राप्त कर रहे हैं और इस भौतिक जगत में जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि से पीड़ित हैं ।

दुःखद अवस्था से बाहर निकलने की इच्छा हमारी आध्यात्मिक जिज्ञासा के लिए एक उत्प्रेरक का कार्य करती है, जैसा कि उन निर्धन ने गरीबी के कारण ही ज्योतिषी का अपने घर में स्वागत किया था । भविष्य में कुछ राहत पाने की इच्छा ने उसे इस जिज्ञासा की ओर मोड़ दिया। भगवान् श्रीकृष्ण गीता जी में हमें यह बता रहे हैं कि यह भौतिक संसार अनित्य व क्षणभंगुर है, तथा दुःखालयं अशाश्वतम् है, इसलिए यदि हम भी इस भौतिक जगत् में मिलने वाले अपने दुःखों के बारे में प्रश्न पूछने लगेंगे, हम अपनी मूलभूत स्थिति के ज्ञान को प्राप्त कर पायेंगे जो कि दुःखों से मुक्ति है ।

शास्त्र और मुक्त पुरुष हमें हमारी वास्तविक पहचान समझने में सहायता कर सकते हैं जो कि भौतिक न होकर आध्यात्मिक है । हम यह अस्थाई शरीर नहीं अपितु शाश्वत आत्मा हैं और हमारा प्रेममय शाश्वत सम्बन्ध को समझने में ही निहित है ।

इस कथा में निर्धन व्यक्ति के दुःख का कारण उसके पिता और पिता की सम्पत्ति की अज्ञानता है । अज्ञानता के कारण दुःखी हैं । जिस प्रकार अग्नि की छोटी चिनगारी होती है, उसी प्रकार हम श्रीकृष्ण के छोटे आध्यात्मिक अंश हैं ।

भगवान् सच्चिदानंद अर्थात् शाश्वतता, ज्ञान एवं आनन्द से परिपूर्ण हैं और हम भी हैं – किन्तु हम मिथ्या रूप से अपनी पहचान इस अस्थाई भौतिक प्रकृति के साथ कर रहे हैं और अपनी वास्तविकता को भूल गए हैं । अपनी मूलभूत स्थिति की अज्ञानता के कारण हम बारम्बार दुःखों से भरे जन्म–मृत्यु के चक्र को स्वीकार करते हैं । किन्तु वास्तव में हमारा छिपा हुआ वह खजाना क्या है और हम किस प्रकार इसे खोज सकते हैं ?

भगवद्गीता (९.१८) में भगवान् श्रीकृष्ण बताते हैं कि वे प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण–पोषण करने वाले, सबके स्वामी, शुभाशुभ के देखने वाले, सबके हित करने वाले अर्थात् वे सभी धर्मों एवं शास्त्रों के अन्तिम ध्येय हैं ।

श्रीमद्भागवतम् (१.२.६) में भी परम धर्म का उल्लेखन है–

मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो जाए और भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कोई अन्य कामना न हो और जो नित्य–निरन्तर

बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरुप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है ।

ध्रुव जी भागवत जी में हमें यह शिक्षा दे रहे हैं कि वास्तव में प्राप्त करने योग्य मायापति श्रीहरि के श्री चरणों का आश्रय ही हैं । इसके अतिरिक्त संसारिक कामनाएँ केवल दुःख का ही कारण हैं । ध्रुव जी पश्चाताप करते हुए बोले (४.९.३४) कि जिन्हें प्रसन्न करना अत्यन्त कठिन है, उन्हीं विश्वात्मा श्रीहरि को तपस्या द्वारा प्रसन्न करके मैंने जो कुछ माँगा है, वह सब व्यर्थ है, ठीक उसी तरह जैसे गतायु पुरुष के लिये चिकित्सा व्यर्थ होती है । ओह ! मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ, संसार–बंधन का नाश करने वाले प्रभु से मैंने संसार ही माँगा ।

यही महत्वपूर्ण उपदेश देते हुए श्री ऋषभजी ने अपने पुत्रों से कहा –

नाहं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्वं
शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ।।
(भा. ५.५.१)

पुत्रो ! इस मर्त्यलोक में यह मनुष्य–शरीर दुःखमय विषय–भोग प्राप्त करने के लिए नहीं है । ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर–कूकरादि को भी मिलते ही हैं । इस शरीर से दिव्य तप ही करना चाहिए, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसी से अनन्त ब्रह्मानन्द (राधा–कृष्ण की प्रेममयी सेवा रूपी परम धन) की प्राप्ति होती है ।

शुद्ध कृष्णभावना (श्रीकृष्ण का ज्ञान और उनके प्रति भक्ति) हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । इसलिए हमारा सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य श्रीकृष्ण और उनके प्रति शुद्ध भक्ति है । किन्तु केवल इसका ज्ञान हमारी सहायता नहीं कर सकता । इसलिए हमें न ही केवल अपने ध्येय को पहचानना है अपितु यह भी अवश्य जानना है कि उस तक कैसे पहुँचा जाए ।

इस प्रकार ज्योतिषी ने न केवल निर्धन व्यक्ति को उसकी विरासत के विषय में जानकारी दी अपितु उसे प्राप्त करने हेतु 'नक्शा' भी दिया । इतना ही नहीं उन्होंने कुछ मार्गों के विषय में चेतावनी भी दी जो आरम्भ में सही दिखाई देंगे परन्तु अन्ततः विनाश की ओर ले जायेंगे । गरीब व्यक्ति का खजाना उसके घर में ही दबा हुआ था परन्तु घर की दक्षिण, पश्चिम या उत्तर दिशाओं में खोदने पर उसे वह खजाना प्राप्त नहीं हुआ । खजाने के इच्छुक निर्धन के लिए वे दिशाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं किन्तु घर की पूर्व दिशा में थोड़े से प्रयास से ही वह उस अकल्पनीय खजाने को प्राप्त कर पाया ।

दक्षिण – कर्म काण्ड

सनातन गोस्वामी को दी गई अपनी शिक्षाओं में श्री चौतन्य महाप्रभु स्पष्ट रूप से इन विषयों का महत्व समझाते हैं । ज्योतिषी ने निर्धन व्यक्ति को बताया कि घर का दक्षिण भाग क्रोधी मधुमक्खियों एवं ततैयों से भरा हुआ है । बंगला भाषा जिसमें श्रीचौतन्य महाप्रभु वार्तालाप करते थे उसमें दक्षिण के दो अर्थ हैं, एक तो दक्षिण दिशा तथा दूसरा रीति–रिवाजों के उपरान्त पुजारियों को दिए जाने वाला दान अर्थात् दक्षिणा । इस कथा के सन्दर्भ में दक्षिण दिशा भौतिक लाभों की आशाओं में किए जाने वाले रीति–रिवाजों का प्रतिनिधित्व करती है । इसका अर्थ है कि केवल रीति–रिवाजों के प्रति आसक्ति सर्वोच्च अध्यात्मिक ध्येय को प्राप्त नहीं होने देगी । यदि हम कर्मकाण्ड के द्वारा परम सत्य को समझने का प्रयास करेंगे, तो हम जहरीले कीड़ों द्वारा डस लिए जायेंगे और सर्वोत्कृष्ट खजाने को खोजने के योग्य नहीं रह जायेंगे ।

जहरीले कीड़ों का काटा जाना कर्मकाण्ड द्वारा दिए जाने वाले दुःखों के समान है । "श्रीमद्भगवद्गीता जी (७.२०) में भगवान् कह रहे हैं कि भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर अनेक नियम को धारण करते हैं ।" परन्तु जब हम कर्मकाण्ड के मार्ग का अनुगमन करते हैं, हम कर्मों के नियमों में बँध जाते हैं जिससे प्रत्येक कर्म की प्रतिक्रिया होती है ।

जब हम पाप करते हैं तो हमें दण्ड भोगना पड़ता है । मधुमक्खियों एवं ततैयों का डंक दण्ड के समान है । किन्तु यदि हम पुण्य कार्य करते भी हैं और हमें उनके अच्छे फल मिलते भी हैं (जैसे अत्याधिक सुख, ऐश्वर्य और स्वर्ग में लम्बा जीवन) फिर भी हम भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं होते, भौतिक संसार के तीनों ताप हमें सताते रहेंगे और हम जन्म–जन्मान्तर तक भौतिक जगत में दुःख भोगने के लिए बाध्य कर दिए जाते हैं । इस प्रकार हम सर्वोत्कृष्ट खजाने से वंचित हो जाते हैं ।

पश्चिम – ज्ञान काण्ड

ज्योतिष ने घर की पश्चिम दिशा में भी न खोदने की चेतावनी दी थी, जहाँ एक भूत द्वारा सुरक्षित होने के कारण वह निर्धन उस खजाने को छू भी नहीं पायेगा । भूत मानसिक चंचलताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो हमारे ध्यान को भ्रमित कर दृढ़ निश्चय को विचलित कर देते हैं । घर की पश्चिम दिशा ज्ञान–काण्ड का प्रतिनिधित्व करती है जो न केवल सर्वोच्च खजाना प्रदान करने में असफल रहती है, अपितु हमें पथभ्रष्ट भी कर देती है । हम शास्त्रों का कितना भी शोध क्यों न करें, हम

अपनी बुद्धि इत्यादि के बल से श्रीकृष्ण को नहीं समझ सकते क्योंकि वह समस्त भौतिक ज्ञान से परे दिव्य हैं । "शुद्ध भक्ति का स्वयं प्रकाशित मार्ग वाद–विवादों एवं मूर्खता भरे तर्कों के लाखों काँटों से पूर्णतया ढका हुआ है ।" श्रील नारद देव जी ने भी नारद भक्ति सूत्र के ७४वें सूत्र में कहा है कि – 'वादो नावलम्बयः ।' भक्त को वाद–विवाद में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि प्रायः किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की अपेक्षा पूर्वाग्रह और अहंकार के कारण वाद–विवाद अपने लक्ष्य से भटका देता है । यह मिथ्या अहंकार हमारी दैन्यता को नष्ट कर देगा, जो कि नारद भक्ति सूत्र के २७वें सूत्र के अनुसार श्री को अति प्रिय हैं और प्रभु को प्रसन्न करने के लिए अति आवश्यक है ।

इसलिए यह 'मूर्खता भरे तर्क' और 'वाद–विवाद' भूत का रूप लेते हैं जो शुद्ध भक्ति के सच्चे खजाने को ग्रसित कर लेते हैं ।

उत्तर – निराकार योग

ज्योतिष ने गरीब व्यक्ति को यह भी चेतावनी दी थी कि यदि वह उत्तर दिशा में खोदेगा तो एक बड़ा काला साँप उसे निगल जाएगा । सभी दिशाओं में सबसे अधिक खतरनाक यही दिशा है जो निराकार ध्यान या योग का प्रतिनिधित्व करती है । निराकारवाद का काला साँप मुँह खोलकर बैठा होता है और अपने निकट आने वाले व्यक्ति को निगलने के लिए तैयार रहता है । निराकारवाद का दर्शन भगवान् को निराकार बताता है और प्रस्तावित करता है कि कोई भी उसमें लीन होकर भगवान् बन सकता है । यह आधारहीन तर्क सगुण साकार भगवान् की भक्ति के सिद्धान्तों के पूर्णतया विरुद्ध है, क्योंकि भक्ति भगवान् और उनके भक्तों के बीच के प्रेममय सम्बन्धों पर आधारित है । ऐसे सम्बन्ध के अभाव में प्रेम या आनन्द का कोई आदान–प्रदान नहीं हो सकता । निराकारवाद ने, जो कि वास्तव में नास्तिकवाद है, बहुत ही बारीकी से आध्यात्मिकता का छद्मवेश लिया हुआ है । परन्तु यह आध्यात्मिकता के लिए आत्महत्या सिद्ध होती है और भक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है ।

पूर्व – खजाना

सर्वज्ञ ज्योतिषी ने अन्ततः यह बताया कि तुम पूर्व दिशा के कोने की थोड़ी–सी मिट्टी हटा लो, वहाँ तुम्हें धन का दबा हुआ पात्र मिलेगा । इस प्रकार धन प्राप्ति का उपाय बताने पर ही उस दरिद्री को धन की सहज एवं निश्चित प्राप्ति होती है । इसी प्रकार शास्त्र भी भगवद्–प्रेम धन की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय बताता है कि कर्म, ज्ञान, योगादि साधनों को छोड़कर श्रीकृष्ण का भजन केवल भक्ति–अनुष्ठान द्वारा ही करो । श्रीकृष्ण केवल भक्ति के ही वशीभूत हैं एवं भक्ति के द्व ारा ही प्राप्त होते हैं । पूर्व दिशा में खोदने से जैसे सहज में धन की प्राप्ति की बात कही गई है, उसी प्रकार शास्त्र–गुरु वचनों पर विश्वास करने तथा अमल करने पर सहज ही कृष्ण – सेवारूप परम धन की प्राप्ति हो जाती है ।

सारांश यह है कि श्री गुरुदेव द्वारा उपदिष्ट भक्ति को छोड़कर और किसी भी साधन से श्री कृष्ण–सेवा की प्राप्ति नहीं हो सकती – यह बात अगले श्लोकों द्वारा प्रमाणित है –

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।
(भा. ११.१४.२०,२१)

वेद–पुराण किस प्रकार मायाबद्ध जीव को उपदेश करके त्रितापों से छुड़ाते हैं – उसे एक दृष्टान्त द्वारा यहाँ वर्णन किया है । सर्वज्ञ व्यक्ति के बताने पर जैसे उस दरिद्र व्यक्ति को धन–प्राप्ति के लिए केवल मिट्टी आदि आवरण को हटाने की ही चेष्टा करनी पड़ी, उसी प्रकार वेद–शास्त्र एवं श्री गुरुदेव अपने–अपने उपदेश के द्वारा मायाबद्ध जीव के चित्त में जो मलिनता है उसे सदा–सर्वदा के लिए हटाने का उपाय बता देते हैं, साधन करते–करते उस मलिनता के हटने पर ह्लादिनी–शक्ति की वृत्ति–विशेष जो प्रेम धन है जिसे श्री कृष्ण सदा निक्षिप्त करते रहते हैं, वह नित्य सिद्ध वस्तु प्रेम उस जीव को प्राप्त हो जाता है । ■

कहीं मान प्रतिष्ठा मिले ना मिले अपमान गले सों बँधाना पड़े ।
जल भोजन की परवाह नहीं करके व्रत जन्म गँवाना पड़े ।
अभिलाषा नहीं सुख की कुछ भी दुःख नित्य नवीन उठाना पड़े ।
ब्रज भूमि के बाहर किन्तु प्रभो! हमको कभी भूल न जाना पड़े ।।

राधे राधे

मान मंदिर कला प्रकाशिनी

ब्रजधाम, जहाँ अनन्तानन्त सृष्टि के रचयिता, पालनकर्ता व संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनी भगवत्ता छोड़कर ब्रज–गोपियों के पीछे याचक बने दौड़ते हैं, उनके इशारे पर नाचते हैं और उनके कहने पर हर छोटा से छोटा कार्य करने के लिए तत्पर हो जाते हैं और इसी ब्रज में अनेक दिव्य लीलाएँ खेलते हैं, इन अद्‌भुत लीलाओं का आस्वादन हजारों वर्षों से न जाने कितने भक्त कर रहे हैं । ये अद्‌भुत व सुन्दर लीलाएँ ब्रज की सांस्कृतिक धरोहर हैं परन्तु दुर्भाग्यवश कलियुग के बढ़ते प्रभाव से यह बहुमूल्य आध्यात्मिक संस्कृति लुप्त होती जा रही है । इसी कारणवश स्थापना हुयी 'श्री मान मंदिर कला प्रकाशिनी' की । श्री बाबा महाराज के दिशा निर्देशन में स्थापित 'श्री मानमंदिर कला प्रकाशिनी' ब्रज और भक्ति की सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित एवं जागृत रखने हेतु एक क्रांतिकारी कदम है ।

बल्कि यूँ कहना गलत न होगा कि ब्रजधाम की राजधानी "श्री धाम बरसाना" स्थित मानमंदिर आज ब्रज का ही नहीं अपितु पूरे भारत की आध्यात्मिक चेतना एवं भक्ति का केन्द्र बिंदु बन चुका है ।

इसी कड़ी में श्री बाबा महाराज के आध्यात्मिक दिशादर्शन पर रंगीली होली व राधाष्टमी के अलौकिक पर्व के उपलक्ष्य में 'श्री मान मंदिर कला प्रकाशिनी' द्वारा प्रति वर्ष भव्य नाटिका का आयोजन किया जाता है, जो केवल नाटिका ही नहीं बल्कि श्री राधारानी के जन्मोत्सव पर उनके भक्तों द्वारा पूर्ण समर्पित भाव से की गई आराधना है, जिसमें मान मंदिर परिकर के सभी भक्त पूर्ण निष्ठा से हर स्तर पर अपनी सेवा देते हैं ।

आगामी नाटिका 'कबीर–चरित्र' ८ सितम्बर २०१६ को – ■

मान मंदिर के निष्काम भक्तों द्वारा देश–विदेश में भगवन्नाम प्रचार–प्रसार

सृष्टि के कल्याण का सरलतम साधन कलियुग में भगवान् श्रीराधामाधव की लीलाओं का गान एवं उनके नाम का आश्रय ही है परन्तु जब कर्म भोगैश्वर्य की कामनाओं से ग्रसित होता है तो वह राजस, तामस बनकर हितकारक नहीं अपितु विनाशक ही हो जाता है । तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है –

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान ।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ।।
(रा.च.मा.उत्तर. १०१)

आज जैसे–जैसे कलियुग बढ़ रहा है तो उसकी धारा के विपरीत धर्म का प्रचार–प्रसार भी बहुत बढ़ रहा है परन्तु आश्चर्य है कि फिर भी लोगों के रोग, शोक, भय आदि का निवारण नहीं हो रहा है । इसका कारण यही है कि जब तक अंधा अंधे का गुरु बना रहेगा तो परिणाम में मंगल कहाँ से होगा ? पथ–प्रदर्शक को ज्ञात नहीं है कि मेरे समक्ष कूप है तो वह स्वयं तो उसमें गिरेगा ही साथ में उसके अनुयायी भी अवश्य ही कूए में गिरकर सर्वनाश को प्राप्त हो जाएँगे । लेकिन मानमंदिर के परम विरक्त संत श्री रमेश बाबा जी महाराज की महती अनुकम्पा से उनकी वाणी के भगवद्–रसामृत का पानकर अनेक अलौकिक साध्वी व सन्तों ने देश–विदेश में भारत की कीर्ति को अमर बनाने का कार्य किया है । ऐसे अनेक वक्ताओं में कतिपय साध्वी एवं संतों का उल्लेख आप को नई दिशा टी.वी. चौनल दे सकता है । ब्रजबालिका साध्वी सुश्री मुरलिका जी, साध्वी श्रीजी शर्मा, राष्ट्रीय संत डॉ. श्रीरामजी लाल शास्त्री जी, पूज्य बालव्यास श्री राधिकेश शास्त्री जी, जो जहाँ भी जाते हैं वहाँ दक्षिणा तो अवश्य लेते हैं परन्तु किसी द्रव्य आदि की नहीं अपितु भगवन्नामाश्रय की दक्षिणा लेते हैं ।

इन सभी ने कभी किसी भी ब्याज से अथवा धर्मकार्यों व परमार्थ के लिए भी कोई याचना नहीं की । यही कारण है इन सभी की प्रेरणा से सर्वत्र आशातीत परिवर्तन जनमानस की भावनाओं में देखा जा रहा है । जो स्वयं नहीं तरा है, वह दूसरों को क्या तारेगा ? निष्किञ्चन, निःस्पृहजन ही समाज का कल्याण कर सकते हैं ।

विदेश–गमन

फिजी – फिजी में साध्वी सुश्री श्रीजी शर्मा ने अपने साथ गिरधर शास्त्री, साध्वी किशोरी देवी एवं वंशीवादक संत श्रीनरसिंहदास जी के साथ कई स्थलों पर श्रीमद्भागवत कथा के माध्यम से अपनी ऐसी निष्काम सेवा के प्रभाव से कितने ही लोगों का हृदय परिवर्तित कर दिया । जिन्होंने मांसाहार एवं मदिरा आदि के परित्याग का संकल्प कर लिया, भगवद्–भक्ति में निरंतर प्रीति करने का भी निश्चय किया । जैसा कि पुराणों में लिखा है कि कोई सारे वेद पढ़ ले, यज्ञ कर ले, तपस्या कर ले, दान कर ले परन्तु

ये सत्कर्म 'किसी जीव को भगवान् से जोड़ने जैसे पावन कर्म' की समता नहीं कर सकते । इसी धारणा को साध्वी श्रीजी शर्मा ने पुष्ट किया । भक्तिरस में सभी को अवगाहन कराया ।

अमेरिका – अमेरिका के अनेक बड़े शहरों में अपने तीन माह से अधिक के प्रवास काल में बालसाध्वी मानमंदिर निवासिनी सुश्री मुरलिका जी ने संत प्रवर डॉ. श्रीरामजीलाल शास्त्री व बालव्यास श्रीराधिकेश शास्त्री जी के साथ अपनी वाणी व अलौकिक व्यक्तित्व से लोगों की जीवनधारा को बदल दिया । माया की चकाचौंध में पल रहे या जीवन जी रहे जीवों को भगवद्भक्ति के रंग में सराबोर कर दिया । वे सर्वत्र कहती हैं कि भक्त वही है जो धन–दौलत या यों कहिए डॉलर बटोरने के लिए नहीं घूमता । एक भगवद्भक्त के पीछे धन की देवी लक्ष्मी जी इस आशय से घूमा करती हैं कि इस भक्त की चरणरज मेरे मस्तक पर पड़ जाये ताकि मैं पवित्र हो सकूँ ।

अमेरिका दौरे के पूर्व ब्रिटेन की राजधानी लंदन में भी वहाँ के श्रद्धालु भक्तों द्वारा सुश्री मुरलिका जी को एक दिन के सत्संग कार्यक्रम के लिए निमन्त्रित किया गया था, उनके मन्त्रमुग्ध कर देने वाले ओजस्वी प्रवचन ने वहाँ के श्रोताओं को इतना प्रभावित किया कि उनके प्रबल आग्रह पर एक दिन की बजाय एक सप्ताह तक साध्वी जी ने श्रद्धालुओं को अपने दिव्य उपदेशामृत से लाभान्वित किया ।

अमेरिका के दौरे में कई प्रसिद्ध स्थानों में उनकी कथाओं का आयोजन किया गया उनमें – न्यूयार्क, न्यूजर्सी, कैलीफोर्निया, लॉस एंजलिस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । लॉस एंजलिस के ऐपलवेली में उनकी कथा के दौरान 'आर्ट ऑफ लिविंग' के संस्थापक व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सन्त माननीय श्री रविशंकर जी महाराज ने पधारकर पटका ओढ़ाकर सुश्री मुरलिका जी तथा राष्ट्रीय संत डॉ. रामजीलाल शास्त्री तथा बालव्यास श्रीराधिकेश जी का सम्मान किया ।

भारत में भी भागवत कथा के माध्यम से जनजागरण

भारत में तो पूरे वर्ष भर सुश्री मुरलिका जी की भागवत सप्ताह कथाओं का कार्यक्रम देश के विभिन्न स्थानों पर होता रहता है । जिनमें बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, दिल्ली, कोलकाता, पटियाला, बरनाला शहर, अलीगढ़ एवं हाथरस आदि स्थान प्रमुख हैं । कई स्थानों को टी.वी. चौनलों द्व ारा भी प्रसारित किया गया । इन कथाओं का भारतीय जनमानस पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि साध्वी जी अपने गुरुदेव ब्रजभूमि के परम विरक्त संत परम पूजनीय श्री रमेश बाबा जी महाराज के निर्देशानुसार निष्काम भाव से भागवत कथा का प्रचार–प्रसार करती हैं, जिसमें श्रद्ध ालु श्रोताओं को दक्षिणा में धन की भेंट न कर समाज कल्याण हेतु प्रतिदिन के नाम–संकीर्तन प्रभातफेरी कार्यक्रम की दक्षिणा देने का आग्रह किया जाता है । उनके इस निःस्वार्थ आग्रह का यह परिणाम होता है कि भागवत सप्ताह कार्यक्रम के दौरान ही भक्तजन जनजाग्रति के इस परममंगलमय साधन का आजीवन संकल्प ले लेते हैं और फिर प्रतिदिन अपने नगरों और गाँवों में धूमधाम से जनसमूह के साथ नाम–संकीर्तन करते हुए दैनिक प्रभातफेरी कार्य को सुचारु रूप से चलाते हैं ।

बरनाला (पंजाब) के भक्तों में सुश्री मुरलिका जी की कथा द्वारा ऐसी जागरुकता आयी है कि उनके यहाँ दैनिक प्रभातफेरी कार्यक्रम में सैकड़ों की संख्या में स्थानीय भक्तलोग नाम–कीर्तन करते हुए समाज का कल्याण करते हैं । ये बरनाला वासी भक्तजन अपने निकटवर्ती अन्य शहरों और गाँवों में जाकर भी हरिनाम–कीर्तन का प्रचार–प्रसार करने में लगे हुए हैं और इन्होंने पंजाब के कई स्थानों में प्रभातफेरी कार्यक्रम चलाकर मोहनिद्रा में सोये समाज के पुनर्जागरण का सराहनीय कार्य किया है ।

इसी तरह प. उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ व हाथरस जिलों में भी साध्वी मुरलिका जी के भागवत सप्ताह कार्यक्रम ने समाज को एक ऐसी दिशा दी है कि इन शहरों के भक्तलोग भी सैकड़ों की संख्या में ढोलक व माइक के साथ प्रतिदिन कीर्तन करते हुए अपने क्षेत्र से आसुरी शक्तियों का विध वंस व भक्ति का प्रचार–प्रसार करने में जुटे हैं । इसी प्रकार हाथरस शहर के यही जागरूक भक्तजन हर महीने सैकड़ों की संख्या में बरसाना धाम की चिन्मयी धरा पर भगवद्उत्सव का आयोजन करते हैं । ■

पतित पावनी श्रीयमुना जी के अविरल व निर्मल प्रवाह हेतु – व्यापक जनान्दोलन

भगवान् श्रीकृष्ण की चतुर्थ पटरानी यमानुजा जो ब्रजवासी भक्तों की प्राणरूपा हैं; कभी समुद्रवत् प्रतीत होती थीं और जिनके निर्मल जल से ही गो, गोवत्स, ग्वालबाल पोषित होते थे, उन्हीं राष्ट्र की गरिमा व पहचान श्रीयमुना जी को राज्यसत्ताओं व कलिकलुषित जीवों ने मृतप्राय बना दिया । धराधाम पर आने के पूर्व जब भगवान् की अवतरण इच्छा हुई तो उन्होंने श्रीकिशोरी जी से भी प्रार्थना की, वे बोलीं – "जहाँ यमुना नहीं है, गोवर्द्धन नहीं है, वहाँ मेरा मन नहीं लग सकता।" भगवान् ने श्रीयमुना जी को धराधाम पर विराजित किया । 'यमुना' गंगा जी की भी बड़ी बहन हैं । आज भी ८ करोड़ से अधिक श्रद्धालु प्रतिवर्ष यमुना जी में आचमन स्नान करते हैं; जबकि जल स्पर्श करने योग्य भी नहीं है । नाथद्वारा श्रीनाथ जी के लिए श्रीयमुना जी का जल जाया करता था परन्तु न राष्ट्र की ओर देखा और न भगवान् की ओर, यमुना को बना दिया एक गंदा नाला ।

मान मंदिर सेवा संस्थान ने विभिन्न संगठनों यथा – भारतीय किसान यूनियन (भानू), समस्त संतजन, भागवताचार्य, ब्रजवासी जनों व यमुना भक्तों को लेकर यमुना के निर्मल व अविरल प्रवाह के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किये । यमुना को हरियाणा के हथनी कुण्ड पर अवरुद्ध कर लिया गया है । १४० किलोमीटर तक एक बूँद भी यमुनोत्री का जल यमुना तल पर नहीं रहता । फिर दिल्ली से नई यमुना बनती है, जो दिल्ली का मल–मूत्र एवं रासायनिक जहरीले द्रव्यों को लेकर वृन्दावन पहुँचती है । 'मान मंदिर सेवा संस्थान' द्वारा सारे तथ्य सरकार व जनता के सामने रखे गये, जिससे राज्य–राष्ट्र व्यथित है परन्तु आज तक कोई ठोस कदम नहीं उठाये जा

सके हैं । संस्थान ने सन् २०१० से लेकर २०११, २०१३, २०१५ में जनान्दोलन किये, जिसमें इलाहाबाद से दिल्ली तक की पदयात्रा, वृन्दावन से दिल्ली तक की पदयात्रा लाखों लोगों के साथ की । २०१५ के आन्दोलन में यमुना भक्तों का सैलाब जब दिल्ली पहुँचा तो लगा कि दिल्ली की गति को ही अवरुद्ध कर दिया हो । सन्तों के हस्तक्षेप के बाद भारत–सरकार के तत्कालीन सूचना प्रसारण मंत्री (श्रीरविशंकर प्रसाद जी) ने समस्त पत्रकारों व यमुना–भक्तों के समक्ष आकर कहा कि हम भारत–सरकार का निर्णय सुनाने आये हैं – पर्यावरण अधिनियम के तहत एक नोटिफिकेशन जारी कर दिया जायेगा कि यमुना के अविरल प्रवाह में कोई बाधा कोई राज्य उत्पन्न न कर सके तथा दिल्ली में २२ किलोमीटर में समानान्तर नाला बना दिया जाएगा ताकि किसी भी प्रकार का प्रदूषित अथवा शोधित जल यमुना जी में न गिरे ।

२२ मार्च २०१५ को हुई इस घोषणा को एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया परन्तु अनेक बार शीर्ष नेताओं को अवगत कराए जाने के बाद भी यमुना जी के लिए कोई उपयुक्त कार्य नहीं हुआ ।

उज्जैन में कुम्भ के अवसर पर अनेक संतो के साथ वार्ता करके यह सुनिश्चित किया गया कि १ दिसंबर २०१६ से पुनः राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किया जाएगा ताकि राजधानी में प्रवाहित होने वाली एकमात्र पवित्र नदी के लिए भारत–सरकार जाग सके और राष्ट्रहित में वाञ्छित दोनों माँगों को पूरा कर सके । इसके लिए तैयारी चल रही है । सितम्बर से प्रचार–प्रसार शुरू हो जायेगा एवं १४ अक्टूबर २०१६ से प्रारम्भ ४० दिवसीय 'श्रीराधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' के दौरान समस्त ब्रजवासियों को यमुनासेवा के लिए तैयार किया जायेगा। परन्तु एक निष्काम राष्ट्रभक्त प्रधानमंत्री श्रीमोदी जी से अपेक्षा है कि भक्तों को इतना कष्ट देने से पूर्व ही माँ यमुना के अविरल व निर्मल प्रवाह हेतु ठोस व स्थाई कदम को उठायें । इससे निश्चय ही राष्ट्र का हित होगा ।

शास्त्रों में वर्णित श्रीयमुना जी की पावन महिमा –

युवयोर्वक्तृ संजाताः केलिश्रम कणाः शुभाः ।
अतः संजायते नूनं तटिनी कापि चोत्तमा ।।
सर्वैः सखीगणैः पेयं त्वं प्रसीद कुरुष्व च ।
इदमेव परं पुण्यं युवयोः केलिजलं शुभं ।
तस्यास्तद् वाक्यमाकर्ण्य सा चकार नदी वराम् ।।
(सनत्कुमार संहिता)

अर्थ – किसी समय श्रीलाड़ली जी ने श्रीलाल जी के साथ सुरति केलि की, जिससे उनके मुखमण्डल पर स्वेद–बिन्दु आ गये । उनको देखकर सखियों ने युगल सरकार से कहा कि आपके लीला–विलास के श्रम से जो मुखमण्डल पर श्रमकण आये हैं, वे परम शुभ हैं, इसलिए उनसे निश्चय ही एक उत्तम नदी उत्पन्न होनी चाहिए और वह हम सभी सखीगणों के लिए पान करने योग्य होगी । इसलिए आप प्रसन्न होकर एक नदी को प्रकट करें । उनकी इस बात को सुनकर श्रीलाड़ली जी ने श्रीयमुना जी को प्रकट किया।

कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत ।
स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम् ।।
यक्ष्ये त्वां गोसहस्त्रेण सुराघटशतेन च ।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम ।।
(वा.रा.अयो. ५५.१६,२०)

अर्थ – कालिन्दी की मध्य धारा में पहुँचकर श्रीसीता जी ने उनकी वन्दना की और उनसे प्रार्थना की – "हे देवी ! मैं आपके ऊपर से होकर पार जा रही हूँ, आप ऐसी कृपा करें जिससे हम सकुशल पार हो जाएँ और आप हमारे पातिव्रत धर्म की रक्षा करना (क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरा हरण होगा और रामजी का रावण से युद्ध होगा ।) अतः लंका विजय के पश्चात् श्रीराम जी के इक्ष्वाकु से पालित अयोध्यापुरी में सकुशल लौट आने पर मैं आपके किनारे हजारों गायों का दान करूँगी और देवदुर्लभ पदार्थों से आपकी पूजा करूँगी ।

गंगा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले ।
यमुना विश्रुता देवी नात्र कार्या विचारिणा ।।
(वाराह पु. १५०.३०)

अर्थ – वराह भगवान् ने पृथ्वी देवी से कहा है – "हे देवी ! मेरे मथुरा मण्डल में गंगा जी से सौ गुना यमुनाजी श्रेष्ठ हैं । इसमें किसी तरह की शंका मत करना क्योंकि ब्रजभूमि का स्पर्श इन्हें प्राप्त है ।"

रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्द लक्षणः ।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम् ।।
(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

अर्थ – पद्मपुराण में कहा गया है कि जो अनन्त ब्रह्माण्डों का परम आधार है, रसरूप है, सच्चिदानन्दमय लक्षणों से युक्त है, उपनिषदों ने जिसको 'ब्रह्म' कहकर गाया है, वह ही स्वयं यहाँ यमुना बना है । ■

देव सरोवर का चमत्कारिक प्राकट्य

दुर्गम और दुर्लभ कार्य भी संकल्प सिद्ध सन्तों की इच्छा से सहज संपन्न हो जाते हैं । ब्रज–वसुन्धरा के गुह्यतम स्थल आदिवद्री की पर्वतमालाओं के मध्य गंगोत्री–यमुनोत्री की पावन धरणी के सुदूर निर्जन वन में स्वयं नारायण भगवान् द्वारा लक्ष्मी जी की प्रसन्नता के लिए निर्मित देव सरोवर जिसे कोई आजतक उद्धार तो क्या खोज तक नहीं पाया था । फिर उसका निर्माण कोई सहज सुगम भी संभव नहीं था । पर्वत श्रेणियों के मध्य सघन वृक्षावलियाँ, दुरूह पथ, दूर–दूर तक किसी जल श्रोत का अभाव; जाने कितनी बाधाएँ, यदि कोई मानव उसके निर्माण की कल्पना करता भी तो परिस्थिति प्रतिकूलता में मन मसोस कर रह जाता ।

यह सरोवर ५,५०० वर्षों तक लुप्त रहा और एक दिन पूज्य श्री बाबा महाराज ने देव सरोवर के पुनर्निर्माण की घोषणा कर दी; यंत्रवेत्ताओं (इंजीनियरों) के अनुसार देवसरोवर के पुनर्निर्माण पर लगभग ८५ लाख से १ करोड़ रुपयों तक के व्यय की संभावना थी । परन्तु धन–बल और जन–बल के पूर्ण अभाव होने पर भी एक मात्र श्रीराधारानी के चरणों का आश्रय लेकर पुनर्निर्माण का कार्य श्रद्धा और विश्वास से प्रारम्भ कर दिया गया ।

धन्य हैं संतजन जिनके लिए कुछ भी असंभव नहीं होता । ब्रज के वन, पर्वत, सरोवर, गौमाता, यमुना महारानी के संरक्षण–संवर्धन जैसे दुरूह कार्य को जिन्होंने सहज संपन्न किया उनके लिए क्या असम्भव !

ऐसा ही सब कुछ देव सरोवर के विषय में भी है । मानमंदिर के छोटे–छोटे बालक–बालिकाओं व साधु–संतों के प्रबल प्रयास से देव सरोवर का निर्माण कर एक अति प्राचीन इतिहास की रक्षा संभव हुई; साथ ही बहुत लम्बी झील इससे बन सकेगी । 'न कोई प्रचार–प्रसार और न ही जन बाहुल्य में उद्घोष, भगवान् के लिए कार्य करने की जिज्ञासा' यही है बाबा श्री का उद्देश्य । वह कहते हैं कि अहैतुकी भक्ति ही किसी भी संकल्प को पूरा कर सकती है ।

दिनाँक १५ मई २०१५ को जैसा कि उनको (पूज्य बाबा महाराज को) पूर्वाभास हो गया था कि आज देवसरोवर जलाप्लावित हो जाएगा, अतः मान मंदिर की सारी जनशक्ति को देव सरोवर के कार्य में लगा दिया । शाम होते होते तो केवल उसी क्षेत्र में इतनी भयंकरतम वर्षा हुई मानो हरिद्वार ऋषीकेश उठकर वहीं आ गए हों ।

ये है महापुरुषों की दिव्य दृष्टि का चमत्कार ।

महापुरुषों की दृष्टि जहाँ भी पड़ जाय वहाँ अनेक चमत्कारों का होना स्वाभाविक ही है । भगवान् को प्रकट करने वाले उनके भक्त ही होते हैं । बाबा महाराज का परन्तु अभी मन संतुष्ट नहीं था क्योंकि वे चाहते थे कि ब्रज की यह ऐसी झील बने जो सम्पूर्ण ब्रजवासियों को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भक्त परिकर को आह्लादित कर सके । इसीलिए एक वर्ष पश्चात् पुनः देवसरोवर को दिव्यता प्रदान करने का मन हुआ और सत्यसंकल्प महाराजश्री की इच्छानुसार पानी रिसने के सारे रास्ते बंद किए गये, वहाँ एक संत–कुटीर का भी निर्माण हुआ । उक्त कार्य की सम्पन्नता के उपरान्त पुनः उसी क्षेत्र में व्यापक वर्षा हुई और प्रकृति ने मानो अपने आराध्य श्रीकृष्ण व उनकी भी आराध्या श्रीराधारानी के मनोविलास की अभिलाषा को पूर्ण करके अपने को कृतार्थ किया हो । मीलों लम्बी जलधारा और चारों ओर फैली हरियाली सबके मन को आकृष्ट करने लगी ।

मान मंदिर के एक सन्त श्रीमुनिस्वरूप जी जो कई दिनों से वहीं सेवारत् थे, किसी चमत्कार की आशंका से वहीं सरोवर के किनारे बिश्राम करने लगे । स्वल्पनिद्रोपरांत जैसे ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो क्या देखते हैं एक अतिदीर्घकाय काला सर्प फन फैलाये उनके सिर के समीप बैठा है; उन्होंने भयभीत होकर पूज्य गुरुदेव बाबा महाराज का स्मरण किया और प्रार्थना की कि 'हे नाग देवता ! मुझे भय लग रहा है आप कृपा करके चले जाएँ ।' इतना सोचते ही वह सर्प धीरे से चला गया और कुछ दूर जाकर अदृश्य हो गया । चूँकि स्थान स्वयं चमत्कारी है एवं बाबा महाराज द्वारा कराई गयी सेवा भी चमत्कारपूर्ण ही थी फिर क्यों न चमत्कार दिखाई देगा। ■